प्रस्ताविक

प० दीपचन्दजी काशलीवाल



प० दीपचन्द जी शाह अठारहवीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान और कवि थे। आप आध्यात्मिक ग्रथों के मर्मज्ञ और सासारिक देह भोगों से उदास रहते थे। आपकी परिणति सरल थी, सभी साधर्मी भाईयों से आपका वात्सल्य था। आपकी जाति खडेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। आप सागानेर के निवासी थे और बाद को कारण वश जयपुर राज्य की पुरातन राजधानी आमेर में आगये थे, वहीं पर रहते हुए इन्होंने ग्रथ रचना की है। इससे और अधिक परिचय आपका प्राप्त नहीं हो सका इसलिये यहा पर उनके मातृ पितृ जीवन शिक्षा, तथा जीवन घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जासकता।

आप तेरह पथ के अनुयायी थे। यद्यपि उस समय तेरह और बीस पथ में विशेष कशमकश नहीं थी जितनी कि बाद को उसमें खींचातानी हुई, परतु दिगम्बर जैन समाज में तेरह-बीस पथ का भेद स० १७७९ से पूर्व का है, उसका निश्चित समय तो अभी अज्ञात है परन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जासकता है कि भट्टारकों की तानाशाही के खिलाफ यह पथ अठारवीं शताब्दी तथा इससे पूर्व ही प्रारम्भ होगया था। और बाद को

वह स्त्रूव ही विस्तृत हुआ। इससे सबसे अधिक लाभ तो यह हुआ कि जैन शास्त्रों का अध्ययन एवं पठन पाठन जो एक अर्से से रुका गया था पुनः चालू होगया। और आज जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ जो विद्वान देखने में आरहे हैं वह सब उसी का प्रतिफल है। इस पथ का श्रेय जयपुर के उन विद्वानों को प्राप्त है जिन्होंने अपनी निस्वार्थ सेवा एवं कर्तव्य निष्ठा द्वारा इसे पल्लवित किया है।

आपकी रचनाओं का अध्ययन करने से यह स्पष्ट मालुम होता है कि आपके हृदय में ससारी जीवों की विपरीताभिनिवेशमय परिणति को देख कर एक प्रकार की टीस थी और वे चाहते थे कि ससार के सभी प्राणी स्त्री पुत्र मित्र धन धान्यादि बाह्य पदार्थों में आत्मत्व बुद्धि न करें—उन्हें भ्रमवश अपना न मानें, उन्हें कर्मोदय से प्राप्त समझ, तथा उनमें कर्तृत्व बुद्धि से समुत्पन्न अहकार ममकार रूप परिणति न होने दें। ऐसा करने मे ही जीव अपने जीवनको आदर्श,सन्तोषी और सुखी अनुभव कर सकता है इसीसे आपने अपनी आध्यात्मिक गद्य-पद्य रचनाओं में भव्यजीवों को परपदार्थ में आत्मत्व बुद्धि न करने की प्रेरणा की है और उससे होने वाले दुर्विपाक को भी दिखलाने का प्रयत्न किया है उनकी ऐसी भावना ही उनकी निम्न रचनाओं का प्रधान कारण जान पड़ता है। इसलिये उन्होंने अपने ग्रन्थों में उस विषय को बार बार समझाने का प्रयत्न किया है।

रचनाओं का परिचय

इस समय आपकी निम्न रचनाएँ उपलब्ध हैं। अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्म पुराण, उपदेशरत्न माला और ज्ञान दर्पण। आपकी ये सभी कृतियां आध्यात्मिक रस से ओत प्रोत हैं और उनमें जीवात्मा को आध्यात्मिक दृष्टि के बोध कराने का खासा प्रयत्न किया गया है। इन रचनाओं में ज्ञान दर्पण को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ हिंदी गद्य में हैं जो ढूंढारी भाषा को लिये हुए हैं जैसा कि अनुभव प्रकाश के निम्न अंश से प्रकट है—

"महा मुनि जन निरन्तर स्वरूप सेवन करैं हैं तातैं अपना त्रैलोक्य पूज्य सबतैं उच्च पद अवलोकि कार्य करना है। कर्म-घटा में मेरा स्वरूप-सूर्य छिप्या है। कछु मेरा-स्वरूप-सूर्य का प्रकाश कर्म घटा करि हण्या न जाय, आवरण है—ढका हुआ है, घटा का जोर है [सो] मेरे स्वरूप कू हरि न सकै। चेतन तैं अचेतन न करि सकै, मेरी ही भूल भइ, स्वपद भूला, भूल मेटि जबही मेरा स्वपद ज्यों का त्यों बना है।"

यह भाषा अठारहवीं सदी के अंतिम चरण की है, क्यों कि प० दीपचन्दजी ने अपना 'चिद्विलास' नाम का ग्रन्थ वि० स० १७७९ में बनाया है। इससे यह भाषा उस समय की ही हिन्दी गद्य है, बाद को इसमें भी काफी परिवर्तन और विकास हुआ है और उसका विकसित रूप आचार्य कल्प प० टोडर मल जी के

'मोक्षमार्गप्रकाश' आदि ग्रन्थों की भाषा से स्पष्ट है यह भाषा ढूढारी और व्रज भाषा मिश्रित है, परन्तु यह उस समय बड़ी ही लोकप्रिय समझी जाती थी। आजभी जब हम उसका अध्ययन करते हैं तब हमें उसकी सरसता और मधुरताका पद पदपर अनुभव होताहै। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थकर्ता की भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है जितना कि परिमार्जित रूप पंडित टोडरमल्लजी और पं० जयचन्द्रजी आदि विद्वानों के टीका ग्रन्थों की भाषा में पाया जाता है, फिर भी उसकी लोकप्रियता और माधुर्य में कोई कमी नहीं हुई। इस भाषा का साहित्य जैनियों का ही अधिक जान पड़ता है।

आपकी पद्य रचना भी बड़ी ही सुन्दर और भावपूर्ण है। उसके अवलोकन से आपकी कवित्व शक्ति का सहज ही अनुमान हो जाता है, कविता भी सरल और मनमोहक है। यद्यपि जैन समाज में कविवर बनारसी दास, भगवतीदास, भूधरदास द्यानतराय और दौलतराम आदि हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनकी काव्य-कला अनुपम है। उनकी रचनाएं हिन्दी साहित्य की अपूर्व देन हैं, वह पढ़ने में सरस और मधुर प्रतीत होती हैं। यद्यपि पंडित दीपचन्द जी शाह की कविता मध्यम दर्जे की है, परन्तु उसमें भी स्वाभाविक सरसता विद्यमान है और वह कवि की आन्तरिक प्रतिभा का प्रतीक है।

पाठकों की जानकारी के लिये 'ज्ञानदर्पण' के दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

अलख अरूपी अज आतम अमित तेज, एक अविकार सार पद त्रिभुवन में, चिरलों सुभाव जाको समै हू सम्हारो नाहि, पर पद आपो मान भम्यो भव वन में। करम कल्लोलनिमें मिल्यो है निसक महा, पद पद प्रतिरागी भयो तन तन में, ऐसी चिरकाल की बहु विपति विलाय जाय, नैक हू निहार देखो आप निज धन में ॥ ६७॥

निहचैं निहारत ही आतमा अनादि सिद्ध, आप निज भूल ही तैं भयो विवहारी है, ज्ञायक सकति यथा विधि सो तो गोप्य दइ,प्रगट अज्ञान भाव दशा विसतारी है। अपनों न रूप जानै और ही सौं और मानै,ठानै बहु खेद निज रीति न समारी है। ऐसे ही अनादि कहो कहा सिद्धि भई, अब नेक हू निहारो निधि चेतना तुम्हारी है।

इन पद्यों में बतलाया है कि "एक आत्मा ही ससार के पदार्थों में सारभूत है, वह अलख है अरूपी, अज और अमित तेजवाला है, परन्तु इस जीव ने कभी भी उस की सभाल नहीं की अनएव पर में अपनी कल्पना कर भव वन में भटकता रहा है। कर्म रूपी कल्लोलों मे निश्शक डोलता हुआ पद पद में रागी हुआ है—कर्मोदय से प्राप्त शरीरों में आसक्त रहा है। यदि यह जीव अपने स्वरूप का भान करने लग जाय तो क्षणमात्र में चिरकाल की बड़ी भारी विपत्ति भी दूर हो सकती है। स्व का अवलोकन करते ही अनादि सिद्ध आत्मा का साक्षात् अनुभव होने लगता है, परन्तु यह जीव अपनी भूल से ही व्यवहारी हुआ है। इसने अपनी ज्ञायक (जानने की) शक्ति को गुप्त कर

अज्ञानावस्था को विस्तृत किया है। यह अपने चैतन्य स्वरूप को नहीं जानता किंतु अन्य में अन्य की कल्पना करता रहता है। अतएव खेद खिन्न होता हुआ भी अपनी रीति को नहीं सम्हालता है। इस तरह करते हुए इस जीव को अनादि काल व्यतीत हो गया, परन्तु स्वात्म लब्धि की प्राप्ति नहीं हुई। कविवर कहते हैं कि हे आत्मन्! तू अब भी पर पदार्थों में आत्मत्व बुद्धि का परित्याग कर, अपने स्वरूप की ओर देख, अवलोकन करते ही साक्षात चेतना का पिंड एक अखंड ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा का अनुभव होगा वही तेरी आत्म निधि है।"

कविवर ने इन पद्यों में कितना मार्मिक उपदेश दिया है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं, अध्यात्म के रसिक मुमुक्षु जन उस से भली भांति परिचित हैं। इस तरह सारा ही ग्रन्थ उपदेशात्मक अनेक भावपूर्ण सरस पद्यों से ओत प्रोत है। इस ग्रन्थ का रसास्वादन करते हुए यह पद पद पर अनुभव होता है कि कवि की आन्तरिक भावना कितनी विशुद्ध है और वह आत्म तत्व के अनुभव से विहीन जीवों को उसका सहज ही पथिक बनाने का प्रयत्न करती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम अनुभव प्रकाश है ग्रन्थ का जैसा नाम है उसके अनुसार ही उसमें विषय का विवेचन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है और अनेक दृष्टान्तों द्वारा उसे समझाने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पहले मुद्रित तो हुआ था, परन्तु उसमें अनेक मोटी मोटी भूलें रह गई थीं जिन्हें नया

मंदिर धर्मपुरा देहली की दो हस्तलिखित प्रतियों की सहायता से शुद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया गया है। परन्तु खेद है कि वे दोनों प्रतियां भी बहुत कुछ अशुद्धियों को लिये हुए हैं अतएव मैं एक शुद्ध प्रति की तलाश में था, परन्तु वह कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकी, और न उनकी दूसरी रचनायें ही मेरे सामने हैं जिन सब का पाठकों को परिचय कराया जाय, ऊपर ग्रन्थों के जो नामोल्लेख किये गयेहैं वे अपने जयपुर के पुराने नोटोंके आधारही किये गये हैं। ग्रन्थमें भाषा साहित्यकी दृष्टिसे काफी परिवर्तन एवं परिवर्धन की आवश्यकता थी, परन्तु पूर्व कृतिकी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपनी ओर से कुछ भी नहीं लिखा गया जो कुछ बनाया या सुधार किया उसे गोल ब्रेकट के भीतर देदिया है, मूल में शुद्ध पाठ रक्खा है और नीचे फुट नोट में उनके अशुद्ध पाठ की सूचना करदी गई है। साथ में संस्कृत प्राकृत पद्यों का भाषा-नुवाद भी यथा स्थान फुटनोट में देदिया है। और विषय का स्पष्टीकरण करने के लिये तुलनात्मक टिप्पण भी देदिये हैं इस तरह इस संस्करण को उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है वह पाठकों को पसन्द आयगा।

आभार

अंत में मैं उन सब सज्जनों का आभार प्रकट करता हूं जिनके सहयोग और प्रेरणा से मैं प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में पाठकों के समक्ष रख सका हूं।

श्रीमान् बा० नेमीचन्दजी पाटनी, जो एक धर्मनिष्ठ परोपकारी सज्जन हैं जिनकी प्रेरणासे मैं इस कार्य में प्रवृत्त हो सका। ला० रतनलालजी मैनेजर शास्त्र भंडार दि० जैन नया मंदिर धर्मपुरा, देहली, जिन्होंने मेरी प्रेरणा को पाकर अनुभव प्रकाश की दोनों हस्त लिखित प्रतियां संशोधनार्थ मेरे पास भेज दीं। स्नेही मित्र प० दरबारीलालजी न्यायाचार्य ने समय समय पर अपना परामर्श दिया और प्रस्तुत प्रेस कापी के कुछ भाग को एक बार पढ़ने की कृपा की। उपान्तमें मैं अपनी धर्मपत्नी सौ० इन्दुकुमारी जैन 'हिन्दी रत्न' का नामोल्लेख कर देना उचित समझता हू जिसने इस ग्रन्थ की प्रेस कापी बड़ी ही सावधानी से तय्यार की है।

ता० १२-८-४६

परमानन्द जैन शास्त्री
वीर सेवा मंदिर, सरसावा



प्रकाशकीय

बहुत समय के प्रयास के बाद आज यह ग्रंथ प्रकाश में आने पर परम हर्ष हो रहा है। करीब १२ वर्ष पहिले मेरी स्वर्गीया पूज्य काकीजी साहिबा, धर्मपत्नी रा० ब० सेठ हीरालालजी साहब, को यह ग्रन्थ केकड़ी में स्वाध्याय के लिये मिला था, वे अध्यात्म ग्रंथों की बड़ी रुचिक थीं। उन्होंने मुझे इस ग्रन्थ का परिचय दिया एव प्राप्त करने का आदेश दिया, लेकिन कोशिश करने पर भी जब यह प्राप्त नहीं हो सका तब उन्होंने इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने की इच्छा व्यक्त की फलत यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत है, दुःख है कि आज वे इस नश्वर संसार में मौजूद नहीं हैं।

बहुत समय बाद एक बार दि० जैन पुस्तकालय सूरत के सूचीपत्र में गुजराती पुस्तकों में अनुभव प्रकाश देखा और मँगवाया तो यही खोजित "**अनुभव - प्रकाश**" गुजराती में अनुवादित होकर श्री जैन स्वाध्याय मंदिर सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुआ पाया, पढ़ कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई और अनुभव हुआ कि हिन्दी से गुजराती में अनुवाद कराकर प्रकाशित कराने वाले अध्यात्म के सच्चे जौहरी हैं।

उस गुजराती अनुभव प्रकाश की १ प्रति मैंने पूज्य श्री जाति भूषण चौधरी कानमलजी साहब को भेजी, उनको यह बहुत ही रुचिकर हुवा, और उन्होंने ग्रंथकार के इस एक अन्य

ग्रंथों को भी हिन्दी में प्राप्त करने की पूर्ण चेष्टा की, फल स्वरूप वे जैपुर में आचार्यो शाह दीपचन्दजी कासलीवाल द्वारा रचित तीन ग्रंथ अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन एवं चिद्विलास प्राप्त कर सके, और तीनों की ही प्रतिलिपि कराकर मेरे को दी। उन ग्रन्थों में से अनुभव प्रकाश तो आपके समक्ष प्रस्तुत है, आत्मावलोकन की प्रेस कापी तैयार हो रही है एवं चिद्विलास अभी सशोधन में है आशा करता हू जल्दी ही प्रकाशित होंगे। उपरोक्त कार्य के लिये हमारे पूज्यवर सबसे ज्यादा धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रमुख साहब श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ ने सशोधित मुद्रित प्रति भेजने की कृपा की इसके लिये हम उनके आभारी हैं।

प्रेस कापी कराने एव सपादन का भार श्रीयुत् प० परमानन्दजी साहब शास्त्री सरसावा को सौंपा गया जिसको उन्होंने मेहनत से पूर्ण किया एव शोध पूर्ण प्रस्तावना भी लिख कर भेजी। प्रेस कापी में Proposition एव स्पष्टीकरण संबंधी कई त्रुटियां रह जाने से ६४ पेज छपजाने पर बीच में ही छपाइ का काम रोकना पड़ा और ६४ पेज से आगे की सारी प्रेस कापी में प० श्रेयांसकुमारजी शास्त्री ने मेरे साथ बैठकर सशोधन किया एव उक्त पडितजी ने ही प्रेस मेनेजर के बीमार हो जाने से प्रूफ रीडिंग वगैरह भी किया। उक्त संपादनादि कार्य के लिये उभय विद्वानों को सहृदय धन्यवाद है।

श्रीयुत शाह दीपचन्दजी साहब की भाषा बहुत असशोधित होने के कारण मूलपाठ को जैसा का तैसा सुरक्षित रखते हुवे यथा स्थान शब्दों की कमी पूर्ति एव अस्पष्ट शब्दों का स्पष्टीकरण कोष्टकों में दे दिया गया है जिससे पाठकों को समझने में सुगमता हो।

मेरी स्वर्गीया पूज्य काकीजी साहिबा का मेरे पर परम उपकार है कि जिन्होंने एसे अपूर्व ग्रन्थ का परिचय दिया, जिसके ही कारण मुझे अध्यात्मधाम सोनगढ़ का परिचय प्राप्त हुआ, जहा आकर मैने पूज्य आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी महाराज के प्रवचनों द्वारा अपने आत्मीय जीवन में नवीनता, सच्चा पुरुषार्थ एव सत्य मार्ग प्राप्त किया।

आजकल कागज की कमी आदि कठिनाइयों से ग्रन्थ को विशेष आकर्षक न बना सके इसके लिये क्षमा याचना है। मेरे पुष्पाजलि व्रतोद्यापन के उपलक्ष में यह ग्रथ आपके समक्ष भेंट है।

भवदीय –

नेमीचन्द पाटनी

डाइरेक्टर आफ मेनेजिंग एजेन्ट

दी महाराजा किशनगढ मिल्स लि०

किशनगढ़।

मेरे दो शब्द

यह अनुभव-प्रकाश ग्रंथ अपने नाम से ही अपने गुणोंको प्रकट कर रहा है अनुभव से ही अन्तरंग आत्मा में अलौकिक प्रकाश होता है इस लिये जो सज्जन इस ग्रंथ की स्वाध्याय करें वे केवल शब्द सौन्दर्य पर ही लक्ष्य नहीं रक्खें, शब्द से अन्तरंग मे अर्थ पर ध्यान दें तथा अर्थ से उसके साकार और निराकार ज्ञान पर लक्ष्य देवें जिससे वास्तविक वचनातीत आनन्द की प्राप्ति होगी।

मैंने भी इस ग्रंथ से इसी क्रम से अपनेअनुभव में अद्वितीय लाभ उठाया है और इसी उपकार निमित्त स्वर्गीय साधर्मी साह दीपचन्द्रजी काशलीवाल द्वारा कृत भजी हुई रचनाओं में से इस एक रचना के ध्यान एव गंभीर मनन पूर्वक पढ़ने के लिये आप सज्जनों से भी आग्रह करता हूँ।

निश्चय से इन्होंने अपनी बहुतसी ग्रंथ रचनाओं में आत्मा का प्रकाश शब्दों द्वारा अनुपम रूपसे दिखलाया है उनमें से २ ग्रंथ १ आत्मावलोकन तथा २ चिद्विलास हमें और उपलब्ध हो गये हैं और उनको भी हम शीघ्र प्रकाशित कराने का प्रयत्न कर रहे हैं आशा है वे भी अपनी अनुपम छटा लेकर आपके अनुभव वृद्धि में सहायक होंगे।

स्थान अजमेर
ता० १ १-४७

विनीत —
चौधरी कानमल
मारोठ निवासी



* श्री समन्तभद्राय नमः *

श्री पं० दीपचन्दजी शाह (कासलीवाल) कृत

अनुभव प्रकाश



मङ्गलाचरण

गुण अनन्तमय परमपद, श्री जिनवर भगवान् ।
ज्ञेय लखैं[1] है ज्ञानमें, अचल सदा निज थान[2] ॥ १ ॥

परमदेवाधिदेव परमात्मा परमेश्वर परम पूज्य अमल अनुपम आनन्दमय अखण्डित भगवान निर्वाणनाथ को नमस्कार करि अनुभव प्रकाश ग्रन्थ करौं हौं, जिनके प्रसादतैं पदार्थका स्वरूप जानि निज आनन्द उप[3]जै।

प्रथम यह लोक षट्द्रव्य का बन्या है। तामैं पञ्चद्रव्यनौं भिन्न सहज स्वभाव सत् चिद्-

---

१ मु० लख्य। २ मु० प्रति में 'जिनथान' के स्थान में 'निजस्थान' कर दिया है जिससे छन्द भङ्ग हो जाता है। ३ क उपजै।

आनन्दादि-अनन्तं गुणमय चिदानन्द हैं। अनादि कर्मसंजोगतैं अनादि अशुद्ध होय रह्या है। तातैं पर पदमें आपा मानि परभाव किये, तातैं जन्मादि दु:ख सहे हैं। ऐसी दु:खपरपाटी अपने अशुद्ध चिन्तवन तें पाई है। जो अपने स्वरूपकी सभार करै तो एक छिन में सब दु:ख विलय (विनश) जाय। जैसा कछु सासता (शाश्वत) आनन्द मय परम पद है, ताकौं पावै, ताकी सभार के करत ही स्वरूप प्राप्ति होय , यह उपाय दिखाइये है। ये ही परिणाम उलटि परमें आपा मानि स्वरूपका विस्मरण करि रह्या है। येही परिणाम सुलटि स्वरूपकौं आपा मानि परका विस्मरण करै, तौ मुकति (मुक्ति) कामिनीका कत (कन्थ) होवै।

ऐसे परिणाम कछु कलेश तौ नाहीं। ये परिणाम क्यों न करै? ताका समाधान–अनादि अविद्यामें पड्या है। मोहकी गाठि निविड़ पड़ी है। आत्मा और परका एकत्व सन्धान होय रह्या है जैसे कोई पुरुष अफीम के अमल कौ चढ़्या है, वह दु:ख पावै है, परि छूटि न सकै, काहेतें बहुत

१ मु० सच्चिदानन्दादानन्त। २ मु० कौन।

पकड्या है ? छूटे सुख है, कलेश नाहीं, परि वाइडि सौं (वाय व वात रोग होने से) ले ही ले। तैसें पर मोह सौं पकड्या है, छूटे सुख है, परि न छूटे है, अनादि सयोग छूटे तैं सुख हो है, परि झूठे ही सुख माने है। याके मेटवे कौं प्रज्ञाछैनी आत्मा के परके एकत्वसन्धानमें डारें, चेतना अश अंश अपना जानै, जामें जड़ (का),प्रवेश नाहीं। कैसें जानै ? सो कहिये है—

यह परमें आपा जानै है, सो यह जान (जानना) निज बानिगी । इस निज (ज्ञान) बानिगी कौं बहुत सत पिछानि पिछानि अजर अमर भये, सो कहने मात्र ही न ल्यावै, चित्तको चेतनामें लीन करें, स्वरूप अनुभवका विलास सुखनिवास है, ताकौ करे, सो कैसें करै सौ कहिये है—

निरन्तर अपने स्वरूपकी भावनामैं मग्न रहै, दर्शन ज्ञान चेतनाका प्रकाश उपयोग द्वार में दृढ़ भावै। चिदपरिणतितैं स्वरूप रस होय है। द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थ अनुभवना अनुभव है। अनुभवतें पंच परमगुरू भये व होंहिगे, (सो) प्रसाद [illegible] है। अनुभव [illegible]

अरिहंत सिद्ध सबै हैं। अनुभौ[1] में अनन्तगुण के सब रस आये हैं सो कहिये है।

ज्ञान का प्रकट प्रकाश अनन्त गुण का परिणति परणवै, वेदै, आस्वादै। तहां अनुपम आनन्द फल निपजै ऐसे ही दर्शन का परिणति परणवै, वेदै, आस्वादै और सुखफल निपजै। याही रीति सब गुणका परणवै, वेदै, आस्वादै, आनन्द अनन्त अखण्डित अनुपम रस लियै उपजै। तातैं सब गुण का रस परणतिकै द्वार अनुभव करवैमें आया। ऐसे ही द्रव्यको परणवै, वेदै, आस्वादै आनन्द पावै। तब परिणति द्वार द्रव्य अनुभव न भया। अनुभव प्रकाशमें गुण परिणति एक रस भये होय है। वस्तुका स्वरूप है। सो गुणचेतना का संक्षेपमात्र वर्णन कीजिये है।

सकल गुणनमें ज्ञान प्रधान है। काहेतैं? ज्ञान विशेष चेतना[2]। ज्ञान सबका जाना है। सूक्ष्म न

---

१ गुण अनन्त के रस सब अनुभौ रस के माहिं। यातें अनुभौ सारिखो और दूसरो नाहिं॥ १ ॥ पंच परम गुरु जे भये जे होंगे जगमाहिं। ते अनुभौ परसादतें यामें धोखो नाहिं॥ १५४ ॥—ज्ञान दर्पण।

२ क और मु० प्रति में गुणको प्राधान्य के पश्चात् ज्ञान विशेष गुणको इतना पाठ अधिक पाया जाता है। ३ मु, क का रस पाठ पाया जाता है।

होता तौ इन्द्रिय ग्राह्य होता, तातैं सूक्ष्म करि ज्ञान की सिद्धि, सत्ता गुण विना सूक्ष्म नासता न होता। वीर्यगुण विना सत्ताकी निष्पत्ति सामर्थ्य कहा पाइये? अगुरुलघु विना वीर्य स्वका भारि भये जडता कौं गहता। प्रमेय गुण विना अगुरुलघुका प्रमाण कहा पाइये? अप्रमाण भये कौन ज्ञान मानता? वस्तुत्व विना प्रमाण किसका कहिये? अस्तित्व विना वस्तुत्व किसकै आकार कहिये? प्रदेशवत्व विना अस्तित्व किसका निरूपिये? प्रभुत्व विना प्रदेश प्रभुता कहांतैं रहती? विभुत्व विना प्रभुत्व सबमैं कहा व्यापता? जीवत्व विना विभुत्व अजीव होता, चेतना विना जीवत्व कहा वर्तता? ज्ञान विना चेतन का विशेष जान्या न परता, दर्शन विना सामान्य विशेष ज्ञान न रहता, सर्वज्ञता विना दर्शनकौं न जानता? सर्वदर्शित्व विना ज्ञानकौं न देखता? चारित्र चेतना विना दर्शन ज्ञान की थिरता कहा रहती? परिणामात्मकत्व विना चिदचिद्विलास कहा तें करता? अकारणकार्यत्व विना परकार्य भये निजकार्य कौ अभाव होता। असंकुचितत्व विना अविनाशी चेतना विलास संकोच न आवता। त्यागोपादान शून्यत्व विना ग्रहण त्याग लग्या रहता। अक-

तृत्व विना कर्मका कर्ता होता। अभोक्तृत्व विना परभाव भोगवता। असाधारण विना चेतनाचेतनका भेद न परता। साधारण विना कोई पदारथ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्व विना वस्तु स्वरूप न धरता। अतत्त्व विना परका तत्त्व आवता। भाव विना स्वभाव का अभाव होता। भाव भाव विना अतीत का भाव अनागत मैं न रहता। भावाभाव विना परिणमन समय मात्र न सम्भवता। अभाव भाव विना अनागत परिणमन न आवता। अभाव विना कर्म का सद्भाव जान्या परता। सर्वथा[1] अभाव अभाव विना अतीत मैं कर्म का अभाव था, सो अनागत अभाव मैं ऐसा न होता। कर्ता विना निज कर्म का कर्ता न होता। कर्म विना स्वभाव कर्म का अभाव होता। करण विना परिणमन करि स्वरूप का साधन था सो न होता। सम्प्रदान विना परिणति स्वरूप मैं आप समर्पण न करता। अपादान विना आपतैं आप करि आप न होता। अधिकरण विना सब का आधार न होता। स्वयसिद्ध विना पराधीनता आवती। अज विना उपजता। अखण्ड विना खण्डिततता पावता।

१ क मु प्रति में 'सर्वथा' पाठ नहीं है।

विमल विना मल होता। एक विना अनेक होता। अनेक विना गुण अनेक का अभाव होता। नित्य विना अनित्य होता। अनित्य विना षट्गुणी वृद्धि हानि न होय। जब (वृद्धि हानि न होय तब) अर्थ क्रियाकारक स्वभाव की सिद्धि न होय। भेद विना अभेद द्रव्य गुण होय। अभेद विना एक वस्तु न होय। अस्ति विना नास्ति होय। नास्ति विना परकी अस्तिता होय। साकार विना निजाकृति न होय। निराकार विना पराकार धरि विनाश पावै। अचल स्वभाव विना चल होय। ऊर्ध्व गमन स्वभाव विना उच्च पद न जान्यौ परै। इत्यादि अनन्त विशेषण ज्ञानी अनुभव करै। सो निज जानि कैसे होय? सो कहिये है—

प्रथम, अनादि परम अरु भ्रमरूप मिथ्यात्व[1] का नाश करै। पीछे, पर-राग रूप भाव विध्वंस करै। जब पर-राग मिटै तब वीतराग होय। जब पर प्रवेश का अभाव भाव भया, तब स्वसंवेदरूप निज ज्ञान होय। अथवा अपने द्रव्य गुण पर्याय का विचार करि निज पद जानै। अथवा उपयोग मैं ज्ञानं[2] रूप वस्तुकौ जानै। अनन्त महिमा भण्डार सार अविकार अपार शक्ति मण्डित

१ क, मु० 'मिथ्या'। २ मु० ज्ञान'।

मेरा स्वरूप है, ऐसा भाव प्रतीति करि करै। ध्यान धरै निश्चल होय यह जानि जानै। निजरूप जाति ही कौ अनूप पदका सर्वस्व जानै। इस स्वरूप की जानि विना पर की मानि करि संसारी दुखी भये। सो परकी मानि कैसें मिटै? सो कहियें है —

भेदज्ञानतैं पर निजका अंश न्यारा न्यारा जानै। मैं उपयोगी मेरा उपयोगित्व ग्रंथ गावै हैं। मैं देखौं, जानौं हौं। यह निश्चय ठीक किये आनन्द बढ़े। पर परिणति मेरी करी है। न करौं तौ न होय मानि मेरी परमें म करी मानि, अब मैं निजमें मानौं, तौ मानत प्रमाण ही मुक्ति तैं (कौ) याही लगाद भई, अवश्य पर होगा। करम के भरम कौ विनाश निज शरम पाये होय है। सो निज शरम कैसें पाइये? सो कहिये है —

मेरा अनन्त सुख मेरे उपयोगमैं है। सो मेरा उपयोग तौ सदा मैं धरौ हौ। मैं उपयोग की भूलि अनुपयोग मे अनादि रत भया, सुख स्थानक चेतना उपयोग भूल्या, सुख कहा तैं होय? अब मैं साक्षात उपयोग प्रकाश ठावा

१ मु प्रति में यह पाठ नहीं है। २ प्रस प्रतियोंमें अश सम्प' पाया जाता है। ३ क, प्रति में यह पाठ नहीं है।

योग्य स्थान) किया। काहे तै ? अहं नर ऐसी
ानि, नर शरीर जड मैं तौ न होय, मेरे उपयोग
भई है। सो ऐसी मानिका करणहार मेरा उप-
ोग अशुद्ध स्वांग धरि बैठा है। जैसें कोई एक
टवा बरद (बलद बैल) का स्वाग ल्याया है, पूछै
, पर मे आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है,
प्रबें मैं नरकी परजाय कब पाऊंगा ? झूठैं ही
छे है, नर ही है। भूलि तै यह रीति भई है। तैसैं
चिदानन्द आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या
है, अपनी आप भूलि मेट, सदा उपयोग धारी
आनन्द रूप आप स्वयमेव ही बन्याहै। बिना
यत्न, तातैं निज निशरजा ही कार्य है। निज श्रद्धा
आये निज अवलोकन होय है। यह श्रद्धा काहेतैं
होय है ? सो कहियें है।—

प्रथम सकल लौकिक रीति तैं पराङ्मुख होय,
निज विचार सन्मुख होय, कर्म कन्दरा विषै छि-
प्या है, चिदानन्दराजा। कर्म कन्दरा तीन हैं।
नोकर्म प्रथम गुफा, दूजी द्रव्य कर्म गुफा, तीजी
भाव-कर्म गुफा। प्रथम, नोकर्म गुफामैं परणति
पैठी कि हमारा राजा दिखै, तहां उसको कछु न

१ मु० प्रति में यह पाठ नहीं है। २ यह मु० प्रति का पाठ है।
३ क० ख० प्रति में 'निजराजा' पाठ दिया है।

दीसै, चक्रति होय रही, तब फिरिनैं लगी, " तब श्रीगुरूनै कह्या कि, तू कहा ढूंढै है ? तब वह कहने लगी, मेरे राजाको देखौं हौं सो न पायो। तब श्रीगुरुनैं कह्या तेरा राजा यहा ही है, मति फिरै, यहा तैं तीसरी गुफा है, तहा बसै है। ताकै हाथ की डोरी इस गुफा तक आई है। सो यह डोरी उसके हाथकी हलाई हालै है। जो वह न होय तौ डोरी आपसैं न हालै है। तातैं विचारि इस शक्ति या डोरीकी अनसूत (सीधमें) चली जाना। कर्ममैं देखि इसकी क्रिया डोरीकौं कौन हलावै है ? द्रव्यकर्म गुफा अंदरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग चारोंके निमित्ततैं नाव पऱ्या है वाकी परिणति भई जैसी जैसी वर्गणा बधी, वह भी उसकी बणाई सत्तासौं द्रव्य कर्म नाव पड्या व उसके भावों के निमित्त तैं नानाकर्म पुद्गल नाम पाया। भाव कर्म गुफा मैं राग द्वे... प्रकाश मैं छिप्या स्वरूप ... नाथ का "प्रशुद्ध स्वा... कर। न ... साध जाय ... तेरा नाथ है। ...

१ यह वाक्य ...

डोरी तिसकौं लागि, तुरत मिलैगा। अपनी ज्ञान महिमाको छिपाय बैठा है। तू पिछानि, यह गुप्त ज्ञान भया तौऊ नाथ छिप्या नहीं। चेतना प्रकाशरूप चिदानन्द राजा पाय सुख पावैगी। निज शर्म का उपाय कह्या। यह निज सुख तौ निज उपयोगमें कह्या। दुर्लभ क्यौं भया है? सो कहिये हैः—

यह परिणाम भूमिका में मोह मदिरा पीय अविवेक मल्ल उन्मत्त होय विवेक मल्लकौं जीति जयथंभ रोपि ठाढ़ा (खड़ा) भया है जोरावर। तातैं आपकी सुखनिधिका विलास न करणै दे। विवेक मल्ल का जोर भये अविवेक हण्या जाय। तब निज निधि विलसिये। पर-रुचि खोटा आहार सेवनतैं मिथ्याज्वर भया। तब विवेक निर्बल भया। तातैं स्वआचार पारा श्रद्धा बूटी के पुटसौं सुधर्‍या, ताका सेवन करे, तब विवेक मल्ल मिथ्याज्वर मेटि सबल होय अविवेककौं पछारै। तब आनन्द निधि का विलास होय। स्वआचार करा। श्रद्धा कैसें होय? सो कहिये है—

इस अनादि संसार में पर विचार अनादि किया। मेरी ज्ञान चेतना अशुद्ध भई। अब स्व-आचार पारा सेवन करिये तौ, अविनाशी पद

भेटिये। मैं कौन हौं ? मेरा स्वरूप कहा ? कैसे पाईये ? प्रथम पद अपनेका उपयोग प्रकाश है। दर्शन ज्ञान उपयोग चारित्र उपयोग। दर्शन देखना है ज्ञान जानना है, चारित्र परिणाम करि आचरिता है। ऐसा ज्ञेय का देखना जानना आचरणा अनादि किया अपने विशुद्ध पदमैं उपयोग न दिया। अतींद्रिय सुख के लाभ बिना रीता रह्या। अनन्ते तीर्थंकर भये तिनहू नैं स्वरूप शुद्ध किया, अनन्त सुखी भये। अब मोकौं भी ऐसे ही स्वरूप शुद्ध करना है।

महामुनिजन निरंतर स्वरूपसेवन करैं हैं। तातैं अपना त्रैलोक्य पूज्य सबतैं उच्चपद अवलोकि कार्य करना है। कर्म घटामें मेरा स्वरूप सूर्य छिप्या है कछु मेरे स्वरूप सूर्यका प्रकाश कर्म घटाकरि रुक्या न जाय, आवरया है (ढका हुआ है)। घटाका जोर है (सो) मेरे स्वरूपकू हणि न सकै। चेतनतैं अचेतन न करि सकै। मेरी ही भूलि भई। स्वपद भूल्या भूलि मेटी जबही मेरा स्वपद ज्योंका त्यों बन्याहै।

जैसे को' रत्नद्वीपका नर था। तहां रत्न के मन्दिर थे। रत्न समूहमैं रहै था। परबे :

---

१ परीक्षा, ओसना, अथवा गुण और दोष की ठीक ठीक निर्णायक दृ

जानैं था। और देश मैं आया, कणगती (कमर मैं बांधने का कटिसूत्र या करधनी) में हरिन्मणि लगी थी। एक दिन सरोवर स्नान कौं गया। जौंहरी नें देख्या। हर्‍या पाणी इसकी मणिप्रभा तैं सरोवर का भया। तब उस पासि एरु नग ले राजा समीप उस नर कौं लेगया। एक नगके मोल सौं कोडि मंदिर भरे ग्ती दीनार दिवाई। तब वह नर पछताया। मेरा निधान मैं न पिछान्या। तैसैं अपना निधान आप समीप है। पिछानत ही सुख होय है। मेरा आत्मा ज्ञान दर्शन का धारी चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्त चैतन्यशक्ति करि मण्डित अनन्त गुणमय है। मेरे उपयोग के आधीन थप्पा है। मैं मेरे परिणाम उपयोग मेरे स्वरूपमैं धरूंगा। अनादि दुःख मेटूंगा। परमपद भेटूंगा। यह सुगम राह स्वरूप पावनेका है। दृष्टि के गोचर करना ही दुर्लभ है। सो सन्तों ने सुगम कर दिया है। उनके प्रसादतैं हमों ने पाया है॥

सो हमारा अखण्ड विलास सुख निवास

---

१ ख० प्रति में यह पाठ निम्न रूप में दिया है "सो एक दिन सरोवर को पाणी पीवन कौं गयौ तब उस नर कौं जौंहरी ने देखा, पाणी हरा भया भाव जाण्या याके पास नग है, तब जौंहरी ने पिछाण्या यह परख न जानैं है।"

स अनुभव प्रकाशमें है। वचनगोचर नाहीं, भावनागम्य है। यह मेरा ज्योति स्वरूप का प्रकाश मैं हैं, प्रगट इस घट में प्रकाशता है, सो देखता है। छिप्या नाहीं गोप्य कैसें मानों? छती वस्तु कों अनछती कैसें करा? छती अनछती न होती है। पीछे झूठे ही छती कों अनछती मानी थी। तिसका अनादि दुःख फल भया था। शरीर कों आपा कैसें मानिये? यह तो रक्त वीर्य तें भया, सात धातु जड़, विजातीय विनश्वर पर [है] सो मेरी चेतना यह नाहीं। ज्ञानावर्ण वर्गणा विजातीय स्वरूप का [धरे है] आवर्ण, अचेतन, पचक, विनश्वर, रसविपाक हीन है, सो मेरी नाहीं विभाव स्वभाव मलिन करै, कर्म उदयतैं भया, मेरा नाहीं। मेरा चेतनापद मैं पाया। ज्ञान लक्षणतैं लक्ष्य पिछानि स्वरूप श्रद्धातैं आनन्दकन्द की केली करि सुखी हौं। सो आनन्दकन्द की केली स्वरूप श्रद्धातैं कैसें होय? सो कहिये है —

अनन्त चैतन्य चिन्हकों लिये अखण्डित गुण पुंज पर्याय का धारी द्रव्य ज्ञानादिगुणपरिणति पर्यायअवस्थारूप वस्तुका निश्चय भया ॥

ज्ञान जाननें मात्र, दर्शन देखवे मात्र, सत्ता

---

१ यह वाक्य ख प्रति में नहीं है।

अस्ति मात्र, वीर्य वस्तु निष्पन्न सामर्थ्य मात्र, केवल ऐसा प्रतीत्य भाव रुचि भाव की आस्तिक्यता श्रद्धान श्रद्धा कहिये। तिसतैं उपजी आनन्द कन्द मैं केली करि सुखी हौं। जान्या आनद ज्ञानानन्द, स्वरूप देखै आनन्द सो दर्शनानन्द, परिणया आनन्द चारित्रानन्द। ऐसैं सब गुणानद तिसका मूल निजस्वरूप आनन्द कन्द। तिसकी केलि स्वरूप मैं परिणति रमावणी। तिसतैं सुख समूह भया है। और इस तैं ऊंचा उपाय नाहीं। भव्यनकौं शिवराह सोहली (सहज) यह भगवत नैं बताई है। भगवन्त की भावना त सन्त महन्त भये। मैं भी याही भावनाका अवगाढ थभ रोप्या है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा निरन्तर अभ्यास रहै। कर्म अभावतैं[1] ज्ञान स्वरसमण्डित सुखका पुंज प्रगटै तब कृतकृत्य होय है। इस आतमका स्वरूप गोप्य हो रह्या है। साक्षात् कैसैं होय? भावना परोक्ष ज्ञान करि बढ़ाई है। सो कैसे सिद्ध होय? सो कहिये है—

जैसैं दीपक के पाच पडदे हैं। एक पडदा दूरि भये, झीणा बारीक उद्योत भया। दूजा पडदा दूरि भया, तब चढ़ता प्रकाश भया। तीजा गये

१ म विभ स्वभावतैं।

चढ़ता भया। चउथा गये अधिक चढ़ता भया। पांचवां गया तब निरावरण प्रकाश भया[1]। ऐसैं ज्ञानावरण के पांच पड़दे हैं। मतिज्ञानावरण गये स्वरूप का मनन किया। अनादि परमनन था, सो मिटया। अनन्तर ऐसी प्रतीति आई, जैसैं कोई पुरुष दरिद्री है करज को रोका है, उसके चिन्तामणि है, तब काहू नें कह्या, इस चिन्तामणि के प्रभाव तैं निधि विस्तरि रही है, काहू कौं फल दीया था, सो अब तुमहु निधि तौ ल्यौ। साक्षात् कार भये सब फल पावहुगे। प्रतीतिमैं चिन्तामणि पायेका सा हर्ष भया है। ऐसें मति ज्ञानी स्वरूपका प्रभाव एक देश ही मैं ऐसी जागा केवल ज्ञान का शुद्धत्व प्रतीति द्वार आया सो अशुद्धत्व अशहु अपना न कल्पै है। स्वसवेदन मतिज्ञान[2] करि भया है। ज्ञानप्रकाश अपना है। ऐसैं श्रुत मैं विचारे, मैं मनन किया॥

सो कैसा हौं? मैं ज्ञान रूप हौं, आनन्द रूप हौं। ऐसैं च्यारि ज्ञान मैं स्वसवेदन परिणति कर तौ प्रत्यक्ष है। ज्ञान अवधिमन पर्यय पर[3] के जानवे तैं एक देश प्रत्यक्ष। काहे तैं सर्वाव-

---

१ मु प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है। २ क ख मति द्वारि।
३ मु प्रतिमें 'पर' पाठ नहीं है।

भिकरि सर्ववर्गणा परमाणु मात्र देखै, तातैं एक देश प्रत्यक्ष। मनःपर्यय हू पर-मन की जानैं, तातैं एकदेश प्रत्यक्ष है। केवल ज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है। अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तु मैं जो प्रतीति भई, तातैं सम्यक् नाम पाया। ज्ञानमात्र वस्तु तौ केवल ज्ञान भये शुद्ध, जहा तक केवल नहीं तहां तक गुप्त है, केवल ज्ञान मात्र वस्तु की प्रतीति प्रत्यक्ष करि स्वसंवेदन बढ़ावै है॥

जघन्य ज्ञानी कैसैं प्रतीति करै? सो कहिये है–

मेरा दर्शन ज्ञान का प्रकाश मेरे प्रदेशतैं उठै है। जानपना मेरा मैं हौं। ऐसी प्रतीति करता आनन्द होय सो निर्विकल्प सुख है। ज्ञान उपयोग आवरणमैं गुप्त है। ज्ञानमैं आवरण नाहीं। काहेतैं? जेता अंश आवरण गया, तेता ज्ञान भया, तातैं ज्ञान आवरणतैं न्यारा है, सो अपना स्वभाव है। जेता ज्ञान प्रगट्या तेता अपना स्वभाव खुल्या, सो आपा है। इतना विशेष–आवरणकौं गयेहू परमैं ज्ञान जाय, सो अशुद्ध। जो जेता अंश निजमैं रहै, सो शुद्ध। तातैं गुप्त केवल है। परि (परन्तु) परोक्ष ज्ञान मैं प्रतीति निवारण की करि करि आनन्द बढ़ाइये। ज्ञानं शुद्ध भाव-

मु॰ ज्ञान।

तातैं शुद्ध होय, यह निश्चय है। उक्तं—' या मति' सा गति " इति वचनात्।

अपना स्वरूप साक्षात् कैसे होय ? सो कहिये है—

प्रथम, निर्ममत्वभावतैं संसारके भाव अथो करै। कैसे करै ? सो कहिये है —दृश्यमान जो सब रूपी जड़, तातैं ममत्व न करना। काहेतैं भीत जड तामैं आपा मानैं सुख कहा ? तैसैं शरीर जड़ तामैं ममत्व न करना, काहेतैं आपा मानै सुख कहाँ ? अर राग द्वेष मोहभाव, असाता भाव, तृष्णा भाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव, दुःखभाव, आकुलभाव, खेदभाव, अज्ञान भाव यातै हेय हैं। आत्मभाव, ज्ञानमात्र भाव, शान्त भाव, विश्रामभाव, स्थिरताभाव, अनाकुलभाव आनन्द भाव, तृप्तिभावे, निज-भाव उपादेय है॥

आत्म परिणति मैं आत्मा है। मैं हीं तैसी परिणति करि आपा प्रगटै। आपा मैं परिणति आई मैं हीं पणा की मानि स्वपद का साधन है।

१ मु० प्रति में यह वाक्य नहीं है।
२ मु प्रति में शरीरादि जड़ तामैं आपा मानैं सुख कहा" पाठ है।
३ यह वाक्य क ख० प्रतियों में नहीं है।

मैं मे परिणाम मैं कहे हों। मैं मैं परिणामौंनै स्वपदकी ध्यास्तिरचना करि स्वपद परिणाम विना ठावा (योग्य स्थान) न होय। काय चेष्टा नहीं। वचन उचारणा नहीं। मन चिन्तवन नहीं। आत्म पदमैं आपकी मग्नता स्वरूपविश्राम, आनन्दरूप पद मैं स्थिरता चिदानन्द, चित्परिणति का विवेक करना। चित्परिणति चिदूमैं रमै, आत्मानन्द उपजै। मनद्वार विवेक होय परि मन उरै रहै। मन पर है, ज्ञान निजवस्तु है। सो ऐसैं विचारतैं दूरि रहैहै। काहे तें? परमात्म पद गुप्त है। ताकी मन व्यक्त भावना करत सकै है। काहे तैं? परमात्म भावना करत करत परमात्म पद नजीक आवै तब परमात्मा के तेज तैं मन पहस्यौंही मरि निवरे (निवृत्त होय) है। काहेत? सूरिमा (के)तेजतैं कायर विना सग्राम ही मरै। सूर्य के तेजतैं अन्धकार पहल्यौ ही नाश होय जाय, तैसैं जानियौ॥

चिदानन्द भावनातैं चित्परिणति शुद्ध होय। चित्परिणति शुद्ध भये चिदानन्द शुद्ध होय है। अनात्म परिणाम मेटि आत्मपरिणाम करना ही कृतकृत्यपणा है। योगीश्वर भी इतना करै है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, याही के नि-

मित्त हैं। स्वरूप परिणाममैं अनन्त सुख भया। निजपद (की) आस्तिक्यता भई। अनुपपदमैं लीनता भई। एक स्वरस भया, शुद्ध उपयोग भया। अनुभव सहजपदका भया। महिमा अपार आप परिणाम की है। परिणाम आपके किये विना परमेश्वर परपरिणामतैं गोता खाय हैं। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी भये, परमेश्वर कहाया। ऐसा प्रभाव आत्मज्ञान परिणामका है। अपूर्व लाभ अविनाशीपदका भया परिणमनतैं। सो परिणाम कैसैं स्वरूपमैं लागै? सो कहिये है—

परसूं पराङ्मुख होय वारम्वार स्वपद अवलोकनि के भाव करै। दर्शन ज्ञान चारित्र चेतना का प्रकाश ठानो करि करि स्वरूप परिणति करै। आतम ज्योति अनात्मा सौं भिन्न अखण्डप्रकाश आनन्द चेतना स्वरूप चिद्विलासका अनुभवप्रकाशी परिणाम जातैं उठ्या, तामैं परिणाम लगावै। ज्ञानधारैं परिणाम न करै। परिणाम तरग चेतना अग अभग मैं अन्तरग लीन भया करै। अमरपुरी निवास निज बोधके विकासतैं व्है। निश्चय, निश्चल, अमल, अतुल, अखण्डित अमिततेज अन

१ मु प्रति में यह पाठ नहीं है।

२ इसके बाद मु० प्रतिमें 'परिणाम करि प्रकाशी" वाक्य पाया जाता है।

न्त गुणरत्नमण्डित ब्रह्माण्ड को लखैया ब्रह्मपद पूर्ण परम चैतन्य ज्योतिस्वरूप अरूप अनूप त्रैलोक्य भूप परमात्म रूप पद पाय पावन होय रहै, सो अनुभव की महिमा है ॥

यथार्थ ज्ञान, परमार्थ निधान, निज कल्याण, शिवथान रूप भगवान, अमलान, सुखवान, निर्वाणनिधि, निरुपाधि, निज समाधि, साधिये, आराधिये । अलख, अज, आनन्द, महागुण वृन्द धारी, अविकारी, सब दुःखहारी, बाधारहित, महित, सुरस, रस सहित, निरंशी, कर्मको विध्वंशी भव्यको आधार, भव पार को करण हार, जगत सार, दुर्निवार दुःख चूरै । पूरै पद आप, भव-ताप पुण्य-पापकौं मिटायकैं, लखाय पद आतम दरसाय देत चिदानन्द, सदा सुख कन्द, निरफंद लखावै, अविनाशी पद पावै, लोकालोक झलकावै, फिरि भव मैं न आवै, सब वेद गुण गावै । ताहि कहा लौ बतावै ? वैन (वचन) गोचर न आवै । यह परम तत्व है, अतत्वसौं अतीत, जामैं नाहि

१ दरसन ज्ञान शुद्ध चारितको एक पद, मेरो है सरूप चिन्ह चेतना अनन्त है, अचल अखंड ज्ञान ज्योति है उद्योत जामैं परम विशुद्ध सब भाव में महन्त है । आनन्दको धाम अविराम जाको आठौं जाम, अनुभवैमोक्ष कहे देव भगवन्त है, शिवपद पायवे को और भाँति सिद्धि नाँहि, यातैं अनुभवौ निज मोक्ष तियाकन्त है ॥४५॥ —ज्ञान दर्पण ।

विपरीत, करणी, भव दुःखन की भरणी, हित हरणी अनुसरणी, अनादि की ही मोह राजा नैं बनाई। जग जीवन कौ भाई, दुःखदाई ही सुहाई, या अज्ञान अधिकाई, जामैं लगी बहु काई। ज्ञान रीति उरि आनी। विपरीत करणकौं भानी। साध कता साधि मश होइ। निज ध्यान आनन्द सुधा को रहै पान। मोक्षपद को निदानी इदानी ही समय मैं स्वरसी रसी भये हैं। इन्द्रिय चोर कसी, काय, निरताय निहारयो पद परमेश्वर स्वरूप अघट घट मैं व्यापक अनूप चिद्रूपकौं लखायो। भ्रम भावकौं मिटायो। निज आतम तत्व पायो। दरसायो देव अचल अभेव देव। मामतीको नि वासी सुखराशी, भवमौं उदासी हो लहै। बाहरि न बहै। निज भाव ही कौं चहै। स्वपदका निवास स्वपद मैं है। बहिरग सग मै ढूंढि ढूंढि व्याकुल भया जैसैं मृगनाभकौं (सुगन्धि को) ढूंढै, कहू पर जायगा (दूसरी जगह) न पावै, तैसैं पद आप कौ पर मैं न पावै॥ मोह के विकार तै आपा न सूझै। सतन के प्रतापतै गुण अनन्तमय चिदा नन्द परमात्मा तुरत पावै॥ पर पद आपा जह ताई तहा ताईं सरागी भया व्याकुल रहै। ज्ञान दृष्टिसौं दर्शन ज्ञान चारित्रको एक पद स्वरूप

अवलोकन करत ही पर मानिकी तुरत हानि होय। राग विकार मिटत ही वीतराग पद पावै। तब अनाकुल भया अनन्त सुख रसास्वादी होय आपा अमर करै॥ जैसैं कोई राजा मदिरा पीय निन्द्य स्थानमैं रति मानै, तैसैं चिदानन्द देहमैं रति मानि रह्या है। मद उतरे राज पदका ज्ञान होय राजनिधान विलसै, स्वपदका ज्ञान भये सच्चिदानन्द सम्पदा विलसै॥

कोई प्रश्न करै, ज्ञान तौ जानपणा रूप है, आपकौं क्यौं न जाणैं? ताका समाधान, जानपणा अनादि परमौं व्यापि, पर ही का ह्वो रह्या है। अब ऐसा विचार करे तैं शुद्ध होय। यह परका जानपणा भी ज्ञान विना न होय। ज्ञान आत्मा विना न होय। तातैं पर-पदका जानन हारा मेरा पद है। मेरा ज्ञान मैं हौं। पर-विकार पर हैं। जहा जहा जानपणा, तहा तहां मैं ऐसा दृढ़ भाव सम्यक्त्व है। सो सुगम है, विषम मानि रह्या है। मोहमद वान्यो ज्ञान अमृत पीय उतरि ब्रह्मपद कौं सँभारि, डारि भवखेद, भेद पाय निज मों, अभेद आप पदकौं पिछानि, त्यागि परवाणी, जाणि चिदानन्द, मोह मानि भानि कैं, गुणको ग्राम अभिराम, सुखधाम रूप"

तो अपनी हासी ख्लक मैं (ससारमें) आप करावै। कै देखो अनन्त ज्ञान को धनी भूलि दु.ख पावै है। हासी के भये जन सरमिंदो होय। फेरि हासी को काम न करै। याकी अनादि की जगत मैं हासी भई है। लाज न पकरै है। फेरि फेरि वाही झूठी रीति कौं पकरै है। जाकी वात हू के किये अनुपम आनन्द होय, ऐसो अपनो पद है। ताकौं तो न ग्रहै। पर वस्तु की ओर देखत ही चौरासी को वन्दीखानो है, ताकौं वहोत रुचि सेती सेवै है। ऐसी हठ रीति विपरीति रूपकौ अनूप मानि मानि हर्ष धरै है। जैसैं साप कौ हार जानि हाथ घालै तो दु ख होय ही होय, तैसैं रुचि सेती पर सेवन तैं ससार दु ख होय ही होय ॥

जैसैं एक दृष्टिवन्धवालौ नर एक नगरमैं एक राजा के समीप आय रह्यो। केतेक दिन पीछै मूवौ। तव या नर नै राजा कौ मूवो न जनायौ। राजा को तो वहुत उंडो (ऊंडो गहरो) गाडि माटी दे, ऊपरि वे मालूम जायगा करि दृष्टिवन्ध सौं काठ कौ राजा दरवारमैं वैठायो। दृष्टिवन्ध सू सवकौं साचौ भासै। जव कोई राजा कौं वूझै, तव यो नर जुवाव दे, तव लोक जानै, राजा वोलै

है। ऐसो चरित्र दृष्टि वन्धसौं कियौ। तहां एक नर वन की बूँटी सिर परि टांगि आयौ, उस बूँटी के वलतै वाकी दृष्टि न बँधी। तव वह नर लोक कों कहनै लागो, रे कुबुद्धि जन हो! काठकौ (राजा) प्रत्यक्ष देखिये है। तुम याकौ साचो राजा जानि सेवो हो, धिक्कार है तुम्हारी ऐसी समझिकौं। तैसें ये ससारी सव इनकी दृष्टि मोह सौं बँधी, परको आपा मानि सेवै हैं। परमैं चेतना का अशहू नाहीं। ज्ञान जाकै भयो, सो ऐसै जानै है, ये ससारी कुबुद्धि जड़में आपा करि मानै है। दुःख सहे हैं। धिक्कार इनकी समझि कौं। झूटे हठ दुःखदायककौं सुखदायक जानि सेवै हैं।

जैसें काहू को जन्म भयो, जन्मतें ही आँखि परि, चामड़ी कौ लपेटौ चल्यो श्रायो, माहि सू (आभ्यन्तर में) आँखि कौ प्रकाश ज्यौं कौ त्यौं है[1]। वाह्य चर्म आवरण सौं आपकौ शरीर आपकौं[2] न दरसे। जब कोऊ तवीव (वैद्य-हकीम) मिल्यो, तानै कही, याकै मांहि प्रकाश ज्योतिरूप आँख सारी है। वानैं जतन करि चर्म को लपेटौ

---

१ मु० 'है' नहीं है।

२ मु० प्रति में 'शरीर, आपकौं' नहीं है।

चापा धरि है ? तब उसकी नारी नें कह्या, तू कौन है ? तब चेत भया मैं चापा हौं। तैसैं श्री-गुरू आपा बताया है। पावैं ते सुखी होय। कहा लौं कहिये ? यह महिमा निधान अमलान अनूप पद आप पाया हैं, सहज सुख कन्द हैं, अलख अखंडित है, अमिततेजधारी हैं। दु:खद्वन्द्वमें आपा मानि अति आनन्द मानि रह्या है अनादि ही का, सो यह दु:ख की मूल भूलि जब ही मिटैं, जब श्रीगुरु वचन सुधारस पीवैं। चेत होय परकी ओर अवलोकन मिटै। स्वरूप स्वपद देखत ही तिहू लोकनाथ अपना पद जानैं[1]। विख्यात वेद बतावैं हैं॥

नटवा स्वाग धरैं नाचै है। स्वाग न धरै तौ पर रूप नाचना मिटैं। ममत्वतैं पर रूप होय होय चौरासी का साग (स्वाग) धरि नाचै है। ममत्व मेटि सहज पदकौं भेटि थिर रहै, तौ नाचना न होय। चचलता मेटै चिदानन्द उघरै

---

1 मेरो रूप अनूप विराजत मोहि मैं और न भासत आना।
ज्ञान कला निधि चेतन मूरति एक अखण्ड महा सुख थाना॥
पूरन आप प्रताप लियें जहा योग नहीं परके सब नाना।
आप लखैं अनुभाव भयो अति देव निरंजन को उर आना॥४३॥
—ज्ञानदर्पण

है, ज्ञानदृष्टि खुलै है। नैक स्वरूप मैं सुथिर भये गति भ्रमण मिटै है। तातैं जे स्वरूप में सदा स्थिर रहैं, ते धन्य हैं ॥

अपनी अवलोकनिमैं अखण्ड रस धारा वर्षै है, ऐसा जानि, निज जानि, पर मानि कौं मेटि, यह मैं सुखनिधान ज्योतिस्वरूप परम प्रकाशरूप अनूपपद रूप स्वरूप हौं। इस आकाशवत् अविकार पदमैं चिद्विकार भया, परसयोगतैं। इहा तौ परके निवास का अवकाश न था। कैसैं अनादि ठहर्या ? तहा कहिये है।

कनक खानमैं कनक चिरहीका शुद्ध है। तैसैं आतमा कर्म मैं शुद्ध अनादि ही का है। पर जोग अनादि तैं अशुद्ध उपयोग अशुद्धता लगी है, सो देखि। कैसैं लगी है, सो कहिये है ॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, मन, वचन, देह, गति, कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्य जीव जितनेक पर वस्तु हैं। तितने आप करि जानिये है। सो मैं ही हौं, मैं इनका कर्त्ता हौं, ये मेरे काम हैं, " मै हौं सो ये हैं, ये हैं सो मैं हौं " ऐसैं पर वस्तु कौं आपा जानै, आप कु पर जानै, तव लोकालोक

की जानने की शक्ति सर्व अज्ञान भावरूप परणई है। सोई जीवकौ ज्ञानगुण अज्ञानविकार भया। यों ही जीवका दर्शन गुण था। जेते पर वस्तु के भेद हैं, तिनकौं व्यापकरि देखै है, ये मैं हौं, आपा पर मैं देखै है, आपाकौं पर देखै है। लोका लोक देखने की जेती शक्ति थी तेती सर्व शक्ति अदर्शनरूप भई। यौं करि जीवका दर्शन गुण विकार रूप परिणम्या। अर जीवका सम्यक्त्व गुण था, सो जीवके भेदनकौं अजीव की ठीकता करै है। चेतन कौं, अचेतन, अचेतनकौं चेतन विभावकौं स्वभाव, स्वभावका विभाव, द्रव्य अद्रव्य, गुण अगुण, ज्ञानकौं ज्ञेय, ज्ञेयकौं ज्ञान, आपकौं पर, परकौं आप, यौं ही करि और सर्व विपरीत कौं ठीकता आस्तिक्य भावकौं करै है। यौं जीव का सम्यक्त्व गुण मिथ्यारूप परिणम्या। और जीवका स्व-आचरण गुण था, जेतीं कछु पर वस्तु हैं तिसी पर कौं स्व आचरण करि किया करै, पर विषैं तिष्ठ्या करै, परही कौं (राग भाव वश) ग्रह्या करै, अपने चारित्रगुण की सब शक्ति पर विषै लगि रही है, यौं जीवका स्वचारित्र गुण भी विकाररूप परिणमै है।

अगर इस जीवका सर्व स्वरूप परिणमनेका वलरूप सर्व वीर्य गुण था, सो निर्बल रूप होय परिणम्या स्वरूप परिणमनेका बल रहि गया निर्बल भया परिणम्या। यौं करि जीवका वीर्य गुण विकार रूप परिणम्या। अवर इस जीवका आत्म स्वरूप रस जो परमानन्द भोग गुण था, सो पर पुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता असाता पुण्य-पाप रूप उदय पर-परिणामके बहु भांति विकार चिद्विकार परिणामही का रस भोगव्या करै, रस लिया करै, तिस परमानन्द गुणकी सर्व शक्ति पर परिणामही का स्वाद स्वादा करै। सो परस्वाद परम दुःखरूप। यौं करि जीवका परमानन्द गुण दुःख विकार रूप परिणम्या। यौं ही करि इस जीवके अवर गुण ज्यौं ज्यौ विकारी भये हैं, त्यौं त्यौं ग्रन्थान्तरतैं जानि लेने।

इस जीवके सर्व गुण हीके विकारका चिद्विकार नाम सक्षेप सू कहना (कहा है)। गुण गुणकी अनन्ती शक्ति कही सत्ताकी है (सो वह) शक्ति अनन्त गुण मे विस्तरी। सब गुण की आस्तिरूपता सत्तातें भई। सत्तानें सासता सबकौं राख्या। अनन्त चेतनाका स्वरूप असत्ता होता, तौ चिद्रूप चेतना अविनाशी महिमा न-

रहती। सत् चित् आनन्द विना अफल भये किस कामके ? तातैं सत चित् आनन्द रूप करि आत्मा प्रधान है। अरूपी आतम प्रदेशमैं सर्वदर्शनी सर्वज्ञत्व स्वच्छत्व आदि अनन्त शक्तिका प्रकाश है, ते उपयोग के धारी अविकारी कर्मत्वकरि आवरैं, सकोच विस्तार शरीराकार भये। आत्मा आकाशवत् कैसैं सकोच विस्तार धरै ? पुद्गल सकुचै विस्तरै, तौ काष्ठ पाषाण घटते बढ़ते होय। सो चेतना विना न बढ़ै। चेतन ही बढ़ै घटै, तौ सिद्धके प्रदेशका विस्तार होय कै घटि जाय, सो भी नाहीं। जड़ चेतन दोन्यौं मिले सकोच विस्तार हो है। प्रदेशमैं सब गुण कहे हैं। पर ससार अवस्थातैं मोक्षमार्ग की चाहि न भई। तहा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग कह्या। इनकी जेती जेती विशुद्धि होत भई तेता तेता मोक्षमार्ग भया ॥

निश्चय मोक्ष मार्ग दोय प्रकार—सविकल्प, निर्विकल्प। सविकल्प मैं "अहं ब्रह्म अस्मि" मैं ब्रह्म हू—ऐसा भाव आवै। निर्विकल्प-वीतराग स्वसवेदनं समाधि कहिये। लोकालोक जाननेकी

---

१ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः तत्वार्थसूत्र १ १। २ ख 'तातैं। ३ गु प्रतिमैं यह वाक्य नहीं है। ४ क प्रतिमें यह पक्ति नहीं है।

शक्ति ज्ञानकी, स्वसवेदन जेता भया, तामैं स्व-ज्ञान विशुद्धताके अश होत भये। सो ज्ञान सर्वज्ञ शक्तिमैं अनुभव किया। जेता ज्ञान भया शुद्ध, तेता अनुभवमैं सर्वज्ञानकी प्रतीति भाव वेदना ऐसा भया। सर्वज्ञानका प्रतीति भावमैं आनन्द बढ्या। ज्ञान विमल अधिक होत भया। ज्ञानकी विशुद्धताकौं ज्ञानके बलका प्रतीति भाव कारण है। ज्ञान परोक्ष है। पर परिणतिके बल आवरणके होते भी उस स्वसवेदनमैं स्वजातीक सुख भया ज्ञान स्वरूपका भया। एक देश स्वसवेदन सर्व स्वसवेदनका अग है। ज्ञान वेदनामैं वेद्या जाय है साक्षात् मोक्षमार्ग है। यह स्वसवेदन ज्ञानीही जानै है। स्वरूपतै परिणाम बारै भया, सोही सम्यक स्वरूपाचरण रूप परिणाम सो ही साधक अवस्थामै मोक्षमार्ग, सिद्धि अवस्थामैं मोक्षरूप है। जेता जेता अश ज्ञानबलतैं आवरणका अभाव भया, तेता तेता अश मोक्ष नाम पाया। स्वरूप की वार्ता प्रीति करि सुणै, तौ भावी मुक्ति कही[1]

---

१ 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चित स भवद्भव्यो, भाविनिर्वाणभाजन ॥'—पद्मनं द पच०।

अर्थात्—जिस जीवने प्रीतियुक्त चित्तसे उस आत्म-तत्वकी बातभी सुनी, वह जीव विशेष कर भव्य है और अल्प समयमें निर्वाणका पात्र है।

अनुपम सुख होय अनुभव करैं, तिनकी महिमा कौन कहि सकै?

जैता स्वरूपका निश्चय ठीक भावै, तैता स्वसंवेदन अडिग रहै, तैता स्व आचरण होय तैता ठीक स्वसंवेदन होय, एक भये, तीनों की सिद्धि है। गुप्त शुद्ध शक्ति सिद्धि समानमैं परिणति प्रवेश करै। ज्यौं ज्यौं शुद्धताकी प्रतीति मैं परिणति थिर होय, त्यौं त्यौं मोक्ष मार्गकी शुद्धि होय। ज्यौं कोई अधिक कोस चालै तव नगर नजीक आवै। त्यौं शुद्ध स्वरूपकी प्रतीतिमैं परिणति अवगाढ़ गाढ़ दृढ़ होय, मोक्ष नगर नजीक आवै। अपनी परिणति खेल आप करि आप भव सिन्धुतैं पार होय। आप विभाव परिणति तैं संसार विषम करि राख्या है। संसार-मोक्ष की करणहारी परिणति है, निज परिणति मोक्ष, पर परिणति संसार। सो यह सत्सङ्गत अनुभवी जीवनिकै निमित्ततैं निजपरिणति स्वरूपकी होय, विषम मोह मिटै परमानन्द भेटै। स्वरूप पायवे का राह संतोंने सोहिला (सरल) किया है॥

चौरासी लाख योनि सराय का सदा फिरन हारा कबहू कहू थिर रूप निवास न किया।

१ मु प्रति में पंक्ति नहीं है। २ मु प्रतिमें नहीं है।

जब तक परम ज्योति अपने शिवघर कौं न पहुचे तब तक एक कार्य भी न सरै। कहा भया जो जपी तपी ब्रह्मचारी यति आदि बहुत भेष धरै, तौ तातैं निज अमृतके पीवने तैं अनादि भ्रम खेद मिटे। अजर अमर होय तत्व सुधा सेवनेका मार्ग कहा? सो कहिये है:—

अपनै चिदानन्दस्वरूप कौं अवलोकि, अनुभव करि, सकल अविद्यातैं मुक्त, तत्त्वका कौतूहली होय, निजानन्द केलि कला करि, स्वपदकौं देखि, अनातमका मग फिरि न रहै, अनादि मोहके वशतैं निज हित, अहितमैं मानि रह्या है[2] ता मोह कौं भेदज्ञानने भानि[3], (विनष्ट कर) ज्ञान चेतना का अनुभव करि, अनादि अखण्डित ब्रह्मपदका विलास लेरै ज्ञान कटाक्षमैं है।

अज्ञान पटल जब मिटै, सद्गुरुवचन-अंजनतैं पटल दूरि भये ज्ञान नयन प्रकाशै, तब लोकालोक दरसै। ऐसा ज्ञान ताकी महिमा अपार, अनेक मुनि पार भये। ज्ञानमय मूरतिकी सूरतिका सेवन करि करि अपने सहजका ख्याल है। पर परचैमैं विषम है। सहजबोध कलाकरि सुगम, कष्ट सेठतैं दूरि है।

---

१ मु० प्रतिमें नहीं है। २ मु० प्रतिमें "अहित में मानि रह्या है" नहीं है। ३ मु० नेमें 'भानि' नहीं है।

काहेतें ? अफीम खाये विषकी लहरी तुरत चढ़ै। अमृत सेवनतें तुरत तृप्ति होय सुख पावै। तैसें कर्म सक्लेशमें शान्त पद नहीं। अनन्त सुख निधान स्वरूप भावनाके करत ही अविनाशी रस होय, ता रसकौं मन सेय आवे। तू ताकौं सेय, श्रेयपदरूप अनूप ज्योति स्वरूप पद अपना ही है। अपनैं परमेश्वर पद का दूरि अवलोकन मति करै। आपही कौं प्रभु ध्याय (मान) जाकौं नेक यादि करि, ज्ञान ज्योतिका उदय होय, मोह अन्धकार विलय जाय, आनन्द सहित कृतकृत्यता चित्तमैं प्रकटै। ताकौं वेग (शीघ्र) अवलोकि, आन ध्यावन (परका ध्यान एव चिंतन) निवारि, विचारिकैं सभारि, ब्रह्म विलास तेरा तोमें है। यातें कहा अधिक ? जो याकौं छोड़ि तू परकौं ध्यावै ध्यारि वेद भेद लहि, गहि स्वपद स्वरूप सुखरूप तेरी भावनामें अविनाशी रस चोवा चूवै है। सो भावना करि भ्रमभाव मेंट, तेरी भावनातें झूठे ही भव बनाया है। ऐसा वदफैल स्वभाव कल्लोल के प्रगट होनैं ही मिटै है।

देखि, तू चेतन है। जड़ अजान है। तै अजान मैं आपा मान्या, अशुद्ध भया, तेरी ठैर अजान न परै है। तू अपने पद नैं ईधैं को (इधर को) मति

आवै। तेरा जड़ कछु पह्ला न पकरै है। नाहक (व्यर्थ ही) विरानी (दूसरे की) वस्तुकौं अपनी करि करि झूठी हौंस करै। यह हमैं भोगसें सुख भया, हम सुखी हैं, झूठी भरम-कल्पना मानि मोद करै है। कछू भी सावधानी का अंश नाहीं, यह कोई अचिरज है, तिहू लोक का नाथ होय अपने पूज्य पदकौं भूलैं। नीच पदमैं आपा मानि विकल होय व्याकुल रूप भया डोलै है।

जैसैं कोई एक इन्द्रजाल का नगरमैं रहै, तहा इन्द्रजालीके वश हुआ इन्द्रजालके हाथी घोरे, नर, सेवक, स्त्री सब, तिसमैं काहू कौं हुकम करै है। सेवक आय सलाम करैं, स्त्री नृत्य करै। हाथी चढै। घोड़ा दौड़ावै। इन्द्रजाल मैं यह ख्याल (खेल तमाशा) साचि जानै, विकलता धरि कबेहू काहू के वियोगतैं रोवै, दुःखी होय छाती कूटै। कबहू काहू का लाभ मानि मोद करै कबहूं श्रृंगार बनावै, कबहू फौज देखै, कबहू मौज (आनन्द) बकसै, ऐसैं झूठ का ख्याल साचि मानि रह्या है, समार मैं[2] सब कहै इन्द्रजाल झूठा है, उनमैं रचहु साच नाहीं। ऐसैं देव, नर, नारक तिर्यंच के शरीर जड़ है। चेतन का अंश नाहीं, भ्रमतैं श्रृंगारै।

---

१ मु० प्रतिमें यह शब्द [illegible] है। २ मु० प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

खान पान चोवा (अर्क चूआ) लगावनादि अनेक जतन करै। झूठ ही मैं मोद मानि मानि हरखै मूचै सौं जीवता सगाई करै। कार्य कैसैं सुधरै।

जैसैं श्वान हाड़ को चाबै, अपने गाल, तालु मसूड़े का रक्त उतरै, ताकौं जानै भला स्वाद है। ऐसैं मूढ आप दुख मैं सुख करपै है। पर फंद मैं सुखकंद सुख मानै। अग्नि की झाल शरीर मैं लगै, तब कहै हमारै ज्योती का प्रवेश होय है। जो कोई अग्नि झाल कू बुझावै, तासौं लरै। ऐसैं परमैं दु:ख सयोग, पर का बुझावै तासौं शत्रु की सी दृष्टि देखै। कोप करै। इस पर जोग मैं भोग मानि भूल्या, भावना स्वरसकी यादि न करै। चौरासी मैं पर वस्तु कौं आपा मानै तातै चोर ही चिरकालका (चिर काल का) भया। जन्मादि दुख-दण्ड पाये तौहू चोरी पर वस्तु की न छूटै है। देखो देखो! भूलि तिहू लोकका नाथ नीच पर कै आधीन भया। अपनी भूलि तै अपनी निधि न पिछानैं। भिखारी भया

---

१ जैसें कोऊ कूकर छुधित सूके हाड चाबै, हाडनि की कोर चहु ओर चुभै मुखमैं। गाल तालु रसना मसूढ़नि कौ मांस फाटै चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुखमैं॥ तैसैं मूढ विषयी पुरुष रति रीति ठानै, तामैं चित्त मानै हित मानैं खेद दुखमैं। देखै परतच्छ बल हानि मल-मूत खानि गहै न गिलानि पगि रहै राग रुखमैं ॥१०॥ नाटक समय सार, बंधद्वार।

२ ॥ प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

डोलै है। निधि चेतना है सो आप है। दूरि नाहीं देखना दुर्लभ है। देखैं सुलभ है॥

किसीनैं पूछा, तूं कौन है? वांनैं कह्या, मैं मडा (मुर्दा—मरा हुआ) हौं, तौ बोलता कौन? कहै मैं जानता नाहीं। तौ मैं मडा हौं ऐसा किसनैं जान्या? तब मैं मान्या, मैं जीवता हौं। ऐसैं यह मानै, मैं देह हौं तौ यह देहमैं जो मानना किया सो कौन है? कहै, मैं न जानौं ऐसा ल्यावना किसनैं किया? यह आपाकौं खोजि देखने जानने परखनेमैं स्वरूप सभारै, तब सुखी होय है। जैसें कोई मदिरा पीय उन्मत्त पुरुषाकार पाषाण थंभकौं देखि सांचा जानि उससौं लर्या। वह ऊपरि आ-प नीचै आप ही भया। वाकौं कहै, मैं हार्या। ऐसैं परकौं आपा मानि, आपे मानितें दुःखी भया। कोई दूजा नाहीं दुःखदाता, तेरी भावनाने भव बनाया, ना पैद पैदा किया, अचेतनकौं चलाया, मूर्वैका जतन अनादिका करता है। आपसा तू करता है झूठी मानिमैं तेरा किया कछु जड़ चेतन न होय। तू ही ऐसी झूठी कल्पनातें दुःख[1] पावता है। तेरा क्या फायदा है? तू ही न विचारै है। मेरा फंद मैं पारत हौं। कछु सिद्धि नाही। बिनु विचार

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।

तै अपनी निधि भूल्या। अनन्त चतुष्टय अमृत मैला किया। चेतना मेरा पाव्या फंद गेरता है। आश्चर्य आवे है, अचरज आवे है, परि जो केवल अविद्या ही होती तो तू न आवरया जाता॥

अविद्या जड़ छोटी शक्ति (से) तेरी मोटी शक्ति न हती जाती। परि तेरी शुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बड़ी। तेरी चितवनी तेरे गरें परी। परकौं देखि आपा भूल्या, अविद्या तेरी ही फैलाई है। तू अविद्या रूप कर्मन परि आपा न दे, तौ किछु जड़का जोर नाहीं। तातैं अपरम्पार शक्ति तेरी है। भावना परकी करि भैव करता भया, संसार बढ़ाया। निज भावनातैं अविनाशी अनुपम अमल अचल परम पद रूप आनन्द घन अविकारी सार सत् चिन्मय चेतन अरूपी अजरामर परमात्माकौं पावै है। तौ ऐसी भावना क्यों न करिये! इस अपने स्वरूप ही मैं सर्व उच्चत्व, मंगल पूज्य पद, परमधाम, अभिराम, आनन्द अनन्त गुण स्वसंवेदरस स्वानुभव परमेश्वर ज्योति स्वरूप अनूपदेयाधिदेव पणौ इत्यादि सब पाइये, तातैं अपणौ पद उपादेय है[1]।

---

१ एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः॥ आचार्य अमृतचन्द्र।
जो पद भौ पद भय हरै सो पद सेऊं अनूप।
जिहि पद परसत और पद लगै आपदा रूप॥१७॥ बनारसीदास।

अर अवर पर पद हेय है। एक देश मात्र निजावलोकन ऐसा है। इन्द्रादि सम्पदा विकार रूप भासै है। जिसके भयेतैं अनन्त सन्त सेवन करि अपने स्वरूपका अनुभव करि भवपार भये ताते अपने स्वरूपकौ सेवौ॥

सर्वज्ञ देवनैं सब उपदेश का मूल यह बताया है, एक वेर स्वसंवेदरस का स्वादी होय तौ ऐसा आनन्दमैं मग्न होय, परकी ओर फिरि कबहूँ दृष्टि न दे। स्वरूप समाधि मनन का चिन्ह है तिसके भये रागादि विकार न पाईये, जैसैं आकाशमैं फूल न पाईये। वेर अभ्यासका नाश अनुभवप्रकाश चैतन्य विलास भावका लखाव लखि लक्ष्य लक्षण लिखनेमैं न आवै। लखैं सुख होय। स्वाद रूप लिखै न होय। आत्म सहित चिह्न व्याख्येय, व्याख्या वाणी की रचना, व्याख्याता व्याख्यान करणहार ये सब बातें कहु हैं, सो मोह के विकार तैं मानिये हैं। अनादि आत्मा की आकुलता एक विशुद्ध बोध कलाकरि मिटै है। तातैं सहज बोध कला का निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूप आनन्दी होय भवोदधि कौ तिरौ॥

स्वप्नातरम मति करौ। तुमारे अखण्ड रत्नत्रयादि अनन्त गुण निधान है दरिद्री नाहीं। जो दरिद्री होय सो ऐसे काम करै॥

तुम्हारा निधान श्री गुरनैं तुमकौं दिखाया है, अब सभारि सुखी होहु। जैसे काहू नारीनैं अपनी सेज परि काठ की पुतरी कौं सिंगार सुवाणी, पति आया तब यौं जानै, मेरी नारी शयन करै है। हेला दे या न बोलै तब पवनादि खिदमत (सेवा टहल) सारी रात्रि विषै करी। प्रभात भया, तब जानी म झूठ ही सेवा करी। ऐसें देह कौं साचा आपा मानि सेवै है। ज्ञान भये जाने, यह झूठ अनादि देह मे आपा मान्या। हे चिदानन्द तुम पच इन्द्रिय रूपी चोर पोषौ हौ जानौ हौ, यह हमकौं सुख दे है। सो अन्तर के गुण रत्न ये चोर ले है, तुमकौं खबर नाही। अब तुम ज्ञान खड्ग सभालो। चोरन कौ ऐसै रोको फेरि बल न पकरै। विषय कषाय जीति निजरीति की राहमें आवौ। अर तुम शिवपुर कौं पहुँचि राज करौ तुम राजा दर्शन ज्ञान वजीर राज के थम्भ, गुण वसति, अनन्त शक्ति राज धानी का विलास करौ। अभेद राज राजत तुम्हारा पद है। अचेतन पावन अथिर सौं कहा स्नेह करौ?॥

नीकैं[1] निहारौ। इस शरीर मन्दिर मैं यह चेतन दीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै, परि सासता रतनदीप ज्यौं का त्यौं रहे। व्यवहारमें तुम अनेक स्वाग नट की ज्यौं धरे। नट ज्यौं का त्यौं रहैं। त्यौं बद्ध वा स्पष्ट भाव कर्म को है। तौऊ कमलिनी पत्र की नाईं कर्म सौं न बंधै, न स्पर्शै। अन्य अन्य भाव मांटी धरै हू एक हैं। तैसैं तैसैं अन्य पर्याय धरै हू एक है। समुद्र तरंग करि वृद्धि हानि करै, तौऊ समुद्रत्व करि निश्चल है[2], निभाव करि वृद्धि हानि करै। वस्तु निज अचल है। सोनों वान भेद परि अभेद, यो नाना भेद कर्मतै परि वस्तु अभेद। फटिक मणि हरी लाल पुड़ी नैं भास,स्वभाव श्वेत है। पर,सौं पर,निज चेतना मैं पर नहीं। पर भाव ऊपरि ऊपरि रहैं।जलपरि सिवाल की नाईं शुस शुद्ध शक्ति तेरी चिदानन्द व्यक्त करि भाय ज्यौं व्यक्त रहै। तू अविनाशी रस का सागर। पर रस कटा मीठा देख्या ? जाके

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।
२ सिंधुमें तरंग जैसैं उपजै विलाय जाय नानावत वृद्धि हानि जामैं यह पाइये।
अपने स्वभाव सदा सागर सुथिर रहै ताको व्यय उत्पाद कैसैं ठहराइये।
तैसैं परजाय मांहि होय उत्पाद व्यय चिदानन्द अचल अखंड सुधा पाइये।
परम पदारथमें स्वारथ स्वरूपही को अविनाशी देव आप ज्ञान ज्योति ध्याइये।
ज्ञानदर्पण १८८

निमित्त तैं समार की सुमेरी भई, ताही कौं भला जानि सेवै है। जैसैं मद पीवनहारा मद पीवना जाय, दुःख पावता जाय, अधिक सुमेरीमैं भला जानि जानि सेवै, तैसे भूला है॥

जैसैं एक नगर मैं एक नर रहै। नगर सूना, तहां दूजा और नाहीं, सो वो नर उस नगर मैं चौरासी लाख घरि, तिन घरन का सदा संवारया ही करै, फिरि उजे दिन औरसे रहै, नव याकौं सवारै। इस भांति उन झौंपड़े कौ सवारतैं सवारतैं सारा जन्म बीता। उनके सवारनेतैं रोग भया। उनका सवारै था, सबही का रोग लग्या। आपकी परम चातुरी पैं भूल्या। या नरकौं बड़ी विपत्ति विना प्रयोजन एकला सूनै घरन मैं उनकी सगका सह, टहल करै। आप अनन्त बलवान् हूवा भूलि दुःख पावै है। इस नर का शरीर एक परमवस्तिमा, यहा का यह राजा है। यरा कौं सभाले तो सूने घरन की सेवा तजै, यहा का राज्य करै। तैसैं यह चिदानन्द चौरासी लाख योनि के शरीरन की सवारना करै। जिस घरमैं रहै, यसै सवारै, फिरि दूजी शरीर झौंपड़ीकौं सवारै फिरि और पावै, उसकौ सवारता फिरै। सब देह जड़, तिन जड़न की सेवा

करते करते अनादि वीता। इस शरीर सेवामैं कर्म रोग अनादिका लग्या आया। तिसतैं इस रोग करि अपना अनन्त वल छीन पड्या, वडी विपत्ति जन्मादि भोगवै है। जड़न कौं ऐसा मानै है, मैं ही हौं।

जैसैं वानर एक कांकरा के पडे रोवै, तैसैं याके देह का एक अंग भी छीजे, तौ वहुतेरा रोवै। ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसैं जड़न के सेवन तैं सुख मानै। अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या, जो श्री गुरुके कहे शिवपुरी कौं सभालै, तौ वहाका आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै। "तहा चेतना वसती है। तिहु लोकमें ध्यान फिरै और भव का भ्रमण मेटि फेरि जडमैं न आवै"[1]। आनन्द घन कौं पाय सदा सासता सुख का भोक्ता होय सो कहिये है॥

यह परमातम पुरुष तिसकी निजपरिणति अनन्त महिमा रूप परमेश्वर पद की रमणहारी, सो ही मूल प्रकृति पुरुष प्रकृति का विवेक रूप तरु, तिसके निजानन्द फल (कठिन) तिसकौं तू रसास्वाद ले करि सुखी होहु। जैसैं कोई राजा कौ विराना गढ़ (दूसरे का किला) लेना मुश्किल

१ यह पंक्ति क, ख, प्रतियों में नहीं है।

"अपने गद में नित्य रहे सो न मुश्किल"¹, तैसे इस आतमा कौं पर पद लेना मुश्किल है। काहे तैं अनादि पर पद लेता फिरै है। परि पर रूप न भया, चेतन ही रह्या। अरु चेतनापद आतमा का है, इसकौं न भी जाने है, भूल्या फिर है तौ भी याकी रहणी निश्चय करि याहीमैं है, यातै मुश्किल नाहीं, अपना स्वरूप ही है। भ्रम का पड़दा आपहीनैं अनादि का किया है। तातैं आप आपकौं न सूझै है, परि (परन्तु) आप आपकौं तजि बाहरि न गया॥

जैसें नटवेनें पशु का वेष धरया, तौ वह नर नरपणा कौं तजि बारै न गया। पशु वेष न धरै तौ नर ही है। भ्रमनैं पर ममत्व न करै, तौ देह का स्वांग न धरै, तौ चिदानन्द जैसे का तैसा रहै। जैसें एक डाबीमैं रतन रख्या, वाका कछु बिगरया नाहीं, गुपत पुड़त दूरि करि काढ़ै तौ प्रगट है। तैसैं शरीरमैं छिप्या आतमा है, याका कछु न बिगरया गुप्त है, कर्म रहित भये प्रगट हो है। गुप्त और प्रगट ये अवस्था भेद हैं। दोन्यौं अवस्थामैं स्वरूप जैसे का तैसा है, ऐसा श्रद्धा भाव सुख का मूल है। जाकी दृष्टि पदार्थ शुद्धि

---

१ यह पंक्ति मु प्रति में नहीं है।

ारि नाहीं, कर्म दृष्टि तै अशुद्ध[1] अवलोकै, शुद्ध
ौं न पावै ? जैसी दृष्टि देखै, तैसौ फल होय।
मयूरमुकरद पाषाण है तामैं सब मोर भासै,
पाषाण ओर देखै मोर भासै, पदार्थ ओर देखै
पदार्थ ही है, मोर नाहीं। तैसै परमै पर भास,
निज ओर देखै पर न भासै, निज ही है। सुख-
कारी निजदृष्टि तजि, दुखरूप परमें दृष्टि न दीजै॥

हे चिदानन्दराम! आपकौ अमर करिकैं
अवलोकौ। मरण तुम मैं नहीं। जैसैं कोई चक्र-
रत्न जिसके घर मैं चौदा रत्न नव निधि अर वह
दरिद्री भया फिरै, ताकौ अपने चक्रवर्ति पद
अवलोकन मात्र तैं चक्रवर्ती आप होय, ऐसैं
स्वपदकौ परमेश्वर अवलोकै तौ, तब परमेश्वर है।
देखौ देखौ भूल! अवलोकन मात्र तै परमेश्वर
होय! ऐसी अवलोकना न करै, इन्द्रिय चोरन के
वश भया अपने निधान मुसाय (लुटवाय) दरिद्री
भया, भव विपत्तिकौं भरै है, भूलि न मेटै है।
सो चित्तविकार रूप जीव होय, तब परकौं आपा
मानै।[2] ए भाव जीवका निज जाति स्वभाव नाहीं
है। इन भावनमैं जो व्यापि रही चेतना सो ही

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।
२ यह वाक्य मु० में नहीं है।

चेतना एक तू जीव निज जाति स्वभाव जानि। यह चेतना है सो केवल जीव है, सो अनादि अनन्त एक रस है, तिसतैं यह चेतना साक्षात् आप जीव जानना, तिसतैं शुद्ध चेतना रूप जीव भये। इन रागादि भावन विषै आप ही रत हुआ जीव कर्मचेतना रूप होय प्रवर्तै है। चेतना, जीव चेतना, चेतना रूप आप तिष्ठै है। कर्म चेतना कर्म फल चेतना विकार जीव चेतन का है। परि व्यापक चेतना है। चेतना जीव विना नाहीं है। चेतना शुद्ध जीव का स्वरूप है। ताकै जाने ज्ञाता जीवकै ऐसा भाव होय है ॥

अब हम शुद्ध चेतना रूप स्वरूप जान्या। ज्ञान दर्शन चारित्र रूप हम हैं, विकार रूप हम नाहीं, सिद्ध समान हैं, बन्ध मुक्ति आस्रव संवर रूप हम नाहीं, हम अब जागे, हमारी नींद गई, हम अपने स्वरूपकौं एक अनुभवै हैं, अब हम संसारतैं जुदे भये, हम स्वरूप गज परि आरूढ़ भये, स्वरूप गृह विषैं प्रवेश किया, हम तमासगीर इन संसार परिणमनके भये। हम अब आप अपने स्वरूपकौं देखैं जानैं हैं। इतना विचार तौ विकल्प है। ज्ञानका प्रत्यक्षरस वेदना भावनमें

मु प्रति में यह शब्द नहीं है।

सो अनुभव है। विचार प्रतीतिरूप साधक है, अनुभव भावसाध्य है। साधक साध्य भेद जानै तो वस्तुकी सिद्धि होय। सो कहिये है॥

साध्य-साधक उदाहरण कहिये है। एक क्षेत्रावगाही पुद्गल कर्महीका सहज ही उदय स्थितिकौं होय है, सो साधक अवस्था जाननी। तहा तब लग तिस हवनेकी (होने की) स्थितिस्यौं चित्त विकार हवनेकी (होने की) प्रवर्तना पाईये है, सो साध्य भेद जानना। मिथ्यात्व साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, तहा वस्तु स्वभाव जाति सिद्ध होना साध्य है। जहा शुद्धोपयोग परिणति होना साधक है, तहां परमात्मा साध्य है। व्यवहार रत्नत्रय साधक है, तहा निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिकौं जहा विरति व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहा चारित्र शक्ति मुख्य हवना (होना) साध्य है। देव-शास्त्र-गुरु भक्ति विनय नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहां विषय कषायादि भावनसौं उदासीनता मनःपरिणति की थिरता (स्थिरता) साध्य है। जहां एक शुभोपयोग व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहां परम्परा मोक्ष साध्य है।

जहा अन्तरात्मा रूप जीवद्रव्य साधक है, तहा अभेद आप ही जीवद्रव्य परमात्मा रूप साध्य है। जहा ज्ञानादिगुण मोक्षमार्ग रूप करि साधक है, तहा अभेद आपही ज्ञानादिगुणका मोक्ष रूप साध्य है। जहा जघन्य ज्ञानादि भाव साधक है, तहा अभेद आपही वे ही (उन्हीं) ज्ञानादि गुण का उत्कृष्ट भाव साध्य है। जहा ज्ञानादि स्तोक निश्चय परिणति करि साधक है, तहा अभेद आपही बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण साध्य है जहा सम्यक्त्वी जीवसाधक है, तहा तिस जीवके सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। जहा गुण मोक्ष साधक है, तहा द्रव्य मोक्ष साध्य है। जहा क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तहां तद्रूप साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहा "जहा दरवित भावित यति" व्यवहार साधक है, तहा साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहा भावित मनादि रीति विलय (१) साधक है, तहा साक्षात्परमात्मरूप केवल हवना (होना) साध्य है। जहा पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, तहा चिद्विकार विलय हवना (होना) साध्य है॥

१ मु प्रति में इस पंक्ति की जगह ...ध्य तैं भाव तैं साक्षात द्वैत ... पाया जाता है।

जहां परमाणु मात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, तहां ममता भाव साध्य है। जहा मिथ्यादृष्टि हवना (होना) साधक है, तहा ससार भ्रमण साध्य है। जहा सम्यग्दृष्टि हवना (होना) साधक है, तहा मोक्षपद होना साध्य है। जहा काल लब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौ तैसा ही भाव हवना (होना) साध्य है। हम स्वभाव साधन करि अपने स्वरूपकौं साध्य किया है। यह साध्य-साधक भाव जानि सहज ही साध्य सधै है। विशेष इनका कीजिये है। अहं नरः। अहं देवः। अहं नारकः। अहं तिर्यक्। ये शरीर मेरे, पर मैं निजभाव,परकौं आपा मानना, स्वरूपतैं बाहरि पर पदार्थमैं परिणाम तन्मय करना, राग भावतैं रजकना करि परके स्वरूपकौं आप प्रतीति करि जानियै। ऐसा मिथ्यात्व, दूजा भेद मिथ्यात्व का। ऐसैं मिथ्यात्वकौं साधै है। सो कहिये है॥

अतत्त्व श्रद्धान-मिथ्यादर्शन अयथार्थ ज्ञान—मिथ्याज्ञ न, अयथार्थ आचरण-मिथ्या आचरण। क्षुधादि अठारा दोष[1] सयुक्त देव की भक्ति तारण-

---

[1] जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद। रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद॥ राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष। नाहिं होत अरहतके, सो छबि लायक म ष

बुद्धितैं मिथ्यात्व होय। काहेतैं ? परानुभवी है, मिथ्या लीन है, तिनके सेयें मिथ्यात्व होय। तैसें दोष रहित गुरु ग्रन्थ लीन विपयारूढ पर बुद्धि धारककौं मानैं मिथ्यात्व मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म इनकौं मानैं मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है। अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्या सेवनतैं भया है। तातैं बहिरात्मा साध्यहै। दूजा सम्यग्भाव साधक है। सो वस्तुका जो स्वभाव अनन्त गुण ताकी सिद्धि करे है। काहेतैं ? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौं जब धरै, तब सम्यग्भावकौं लिये होय ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरण रहित केवल ज्ञान रूप सम्यग्अवस्था रूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये। यौं ही आवरण रहित शुद्ध सम्यक्रूप यथावत् निश्चयभाव रूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये॥

द्रव्य अपने द्रव्यत्व जैसा शुद्ध स्वरूप है, तैसेकौं लिये पर्याय जैसा कछु परिणमन रूप स्वभाव है, तैसेकौं लिये, ऐसें द्रव्यगुण पर्यायका स्वभाव जाति सब सिद्ध हवना (होना) सम्यग्भावतैं है। तातैं सम्यग्भाव साधक है। वस्तु जातिसिद्ध हवना (होना) साध्य है,

शुद्धोपयोग परिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहतैं शुद्धोपयोग स्वभाव संगनै होय है। ज्ञान दर्शन तो साधक। तातै सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञान दर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्ति करि शुद्ध हैं। चारित्र गुण बारमैं (गुणस्थान) के ठिकाने सब शुद्ध है। परि (परन्तु) परम यथाख्यात (चारित्र) तेरमैं-चौदमैं (गुणस्थानों) मैं नाम पावै है। तातैं केतेक ज्ञान शक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञान शक्ति करि केवलज्ञान रूप गुण निज रूप ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनै केवलज्ञानकू प्रतीति रुचि श्रद्धाभाव करि निश्चय किया। गुसका व्यक्त श्रद्धानतै व्यक्त होय जाय है॥

एक देश स्वरूपमैं शुद्धत्व सर्व देशकौं साधै है। शुद्धनिश्चय करि शुद्ध स्वरूप जान्या परिणतिमैं शुद्ध निश्चय भया। तब वैसा ही वेद्या (अनुभव किया)। शुद्धका निश्चय शुद्ध परमात्माकौं कारण है। तातै शुद्धोपयोग साधक परमात्मा साध्य है। "व्यवहार रत्नत्रय साधक है[1]," निश्चय साध्य है सो कैसैं? तत्त्व श्रद्धानमैं हेयका हेय श्रद्धान श्रौर निज तत्त्वका उपादेय श्रद्धान, तत्त्व

---

[1] मु॰ प्रति में यह पंक्ति नहीं है।

शुद्धोपयोग परिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहूतैं शुद्धोपयोग स्वभाव संगतैं होय है। ज्ञान दर्शन तो साधक। तातैं सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञान दर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्ति करि शुद्ध हैं। चारित्र गुण बारमैं (गुणस्थान) के ठिकाने सब शुद्ध है। परि (परन्तु) परम यथाख्यात (चारित्र) तेरमैं-चौदमैं (गुणस्थानों) मैं नाम पावै है। तातैं केतेक ज्ञान शक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञान शक्ति करि केवलज्ञान रूप गुप्त निज रूप ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनैं केवलज्ञानकू प्रतीति रुचि श्रद्धाभाव करि निश्चय किया। गुप्तका व्यक्त श्रद्धानतैं व्यक्त होय जाय है॥

एक देश स्वरूपमैं शुद्धत्व सर्व देशकौं साधै है। शुद्धनिश्चय करि शुद्ध स्वरूप जान्या परिणतिमैं शुद्ध निश्चय भया। तब वैसा ही वेद्या (अनुभव किया)। शुद्धका निश्चय शुद्ध परमात्माकौं कारण है। तातैं शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। "व्यवहार रत्नत्रय साधक है[1]," निश्चय साध्य है सो कैसैं? तत्व श्रद्धानमैं हेयका हेय श्रद्धान और निज तत्त्वका उपादेय श्रद्धान, तत्त्व

[1] मु० प्रति में यह पंक्ति नहीं है।

बुद्धितैं मिथ्यात्व होय। काहेतैं ? परानुभवी है, मिथ्या लीन है, तिनके सेयें मिथ्यात्व होय। तेसैं दोप रहित गुरु ग्रन्थ लीन विपयादिक पर बुद्धि धारकनिकौं मानैं मिथ्यात्व मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म इनकौं मानैं मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है। अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्या सेवननैं भया है। तातैं बहिरात्मा साध्य है। दूजा, सम्यग्भाव साधक है। सो वस्तुका जो स्व भाव अनन्त गुण ताकी सिद्धि करै है। काहेतैं ? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौं जब धरै, तब सम्यग्भावकौं लिये होय ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरण रहित केवल ज्ञान रूप सम्यगवस्था रूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये। यौं ही आवरण रहित शुद्ध सम्यक्रूप यथावत् निश्चयभाव रूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये॥

द्रव्य अपने द्रव्यत्व जैसा शुद्ध स्वरूप है, तैसैंकौं लिये पर्याय जैसा कछु परिणमन रूप स्वभाव है, तैसैंकौं लिये, ऐसैं द्रव्यगुण पर्यायका स्वभाव जानि सब सिद्ध हवना (होना) सम्यग्भावतैं है। तातैं सम्यग्भाव साधक है। वस्तु स्वभाव जानिसिद्ध हवना (होना) साध्य है,

शुद्धोपयोग परिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहूतैं शुद्धोपयोग स्वभाव संगतं होय है। ज्ञान दर्शन तो साधक। तातैं सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञान दर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्ति करि शुद्ध हैं। चारित्र गुण बारमैं (गुणस्थान) के ठिकाने सब शुद्ध हैं। परि (परन्तु) परम यथाख्यात (चारित्र) तेरमैं-चौदमैं (गुणस्थानों) मैं नाम पावै है। तातैं केतेक ज्ञान शक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञान शक्ति करि केवलज्ञान रूप गुप्त निज रूप ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनैं केवलज्ञानकू प्रतीति रुचि श्रद्धाभाव करि निश्चय किया। गुप्तका व्यक्त श्रद्धानतैं व्यक्त होय जाय है॥

एक देश स्वरूपमैं शुद्धत्व सर्व देशकौं साधै है। शुद्धनिश्चय करि शुद्ध स्वरूप जान्या परिणतिमैं शुद्ध निश्चय भया। तब वैसा ही वेद्या (अनुभव किया)। शुद्धका निश्चय शुद्ध परमात्माकौं कारण है। तातैं शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। "व्यवहार रत्नत्रय साधक है[1]," निश्चय साध्य है सो कैसैं? तत्त्व श्रद्धानमैं हेयका हेय श्रद्धान और निज तत्त्वका उपादेय श्रद्धान, तत्त्व

१ मु॰ प्रति में ... नहीं है।

प्रथवा मोक्षस्वरूप वाणीतैं लहै। तातै शास्त्रभक्ति कही। गुरु मोक्षमार्ग उपदेशै, शान्त मुद्राधारी गुरु, मुद्रा विना वचन बोल्या ही मोक्षमार्ग दिखावै, ऐसै श्री गुरु सर्व दोष रहित तिनकी भक्ति कही। इनकी भक्ति मुक्ति का यह कारण जानि करै। तब भव भोगसौं उदास होय मन स्वरूप ही की स्थिरता चाहै, कियाँ साधै। तातै उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं। क्रिया रूप, भक्ति रूप, गुण गुणि भेद विचार रूप। सो सातिशय कौं लिये निरतिशयकौं लिये षड्भेद भये, जो सम्यक्त्व सहित सो सातिशय, सम्यक्त्व विना तीनौं निरतिशय। सम्यक्त्व सहितमैं तो नियम है, परम्परा मोक्ष करै ही करै। विना सम्यक्त्व शुभोपयोग संसार सुख दे है, देव पद दे, तथा राजपद दे। तहा देव गुरु शास्त्रकौ निमित्त होय याके लाभ होनो होय तौ होय, नहीं तौ न होय। कारजको कारण विना नियम है,—(अर्थात् विना कार्य नहीं होना) ऐसी रीति जानियौं।

या प्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा मोक्ष साध्य है ॥

अन्तरात्मा भेद ज्ञान करि परसौं भिन्न निज रूप जानै, सिद्ध समान प्रतीति ज्ञान गोचर करै, तब साधक है आप ही आप, निश्चय नय अभेद परमात्मा साध्य है। जहा ज्ञानादि मोक्ष-मार्ग कहिये एक देश स्वसंवेदन शुद्धोपयोग रूप, तहा अभेद ज्ञान मूर्ति आत्मा मोक्ष स्वरूप कौं साधै, तातै अभेद ज्ञान मोक्ष रूप साध्य है। जघन्य ज्ञान तै उत्कृष्ट ज्ञान पाईये, तातैं जघन्य ज्ञान साधक उत्कृष्ट ज्ञान साध्य है। जहा ज्ञानादि स्तोक करि निश्चय करै, तहा वह निश्चय बढै। जैसैं स्तोक अमलनै याह्य लीन अमल बहुत बढै, बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण बढैं, सो साध्य हैं। सम्यक्त्वी जीव दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै, तातैं सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। सम्यक्त्वी साधक है। सम्यक्त्व ज्ञानादि भाव शुद्ध होंय, जब द्रव्य कर्म मिटैं, तब द्रव्य मोक्ष होय, तातैं गुण मोक्षसाधक है, द्रव्य मोक्ष साध्य है। क्षपक श्रेणी चढ़ै जब तद्भव मोक्ष होय, तातैं क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव मोक्ष साध्य है। दरवित लिंग होय,

अथवा मोक्षस्वरूप वाणीतैं लहै। तातै शास्त्रभक्ति कही। गुरु मोक्षमार्ग उपदेशै, शान्त मुद्राधारी गुरु, मुद्रा विना वचन बोल्या ही मोक्षमार्ग दिखावै, ऐसे श्री गुरु सर्व दोष रहित तिनकी भक्ति कही। इनकी भक्ति मुक्ति का यह कारण जानि करै। तब भव भोगसौं उदास होय मन स्वरूप ही की स्थिरता चाहै, किरयां साधै। तातैं उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं। क्रिया रूप, भक्ति रूप, गुण गुणि भेद विचार रूप। सो सातिशय कौं लिये निरतिशयकौं लिये षट्‌भेद भये, जो सम्यक्त्व सहित सो सातिशय, सम्यक्त्व विना तीनौं निरतिशय। सम्यक्त्व सहितमैं तो नियम है, परम्परा मोक्ष करै ही करै। बिना सम्यक्त्व शुभोपयोग ससार सुख दे है, देव पद दे, तथा राजपद दे। तथा देव गुरु शास्त्रकौं निमित्त होय याके लाभ होनो होय तौ होय, नहीं तौ न होय। कारजको कारण बिना नियम है,—(अर्थात् विना कारणके कार्य नहीं होना) ऐसी रीति जानियौं।

---

१ मु प्रति मे यह शब्द नही है।
प्रति मे यह शब्द नही है।

या प्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा मोक्ष साध्य है ॥

अन्तरात्मा भेद ज्ञान करि परसौं भिन्न निज रूप जानै, सिद्ध समान प्रतीति ज्ञान गोचर करै, तब साधक है आप ही आप, निश्चय नय अभेद परमात्मा साध्य है। जहां ज्ञानादि मोक्ष-मार्ग कहिये एक देश स्वसंवेदन शुद्धोपयोग रूप, तहां अभेद ज्ञान मूर्ति आत्मा मोक्ष स्वरूप कौं साधै, तातैं अभेद ज्ञान मोक्ष रूप साध्य है। जघन्य ज्ञान तै उत्कृष्ट ज्ञान पाईये, तातैं जघन्य ज्ञान साधक उत्कृष्ट ज्ञान साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक करि निश्चय करै, तहां वह निश्चय बढ़ै। जैसैं स्तोक अमलतैं बाह्य लीन अमल बहुत बढ़ै. बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण बढ़ै, सो साध्य हैं। सम्यक्त्वी जीव दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै, तातैं सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। सम्यक्त्वी साधक है। सम्यक्त्व ज्ञानादि भाव शुद्ध होय, जब द्रव्य कर्म मिटैं, तब द्रव्य मोक्ष होय, तातैं गुण मोक्षसाधक हैं, द्रव्य मोक्ष साध्य है। क्षपक श्रेणी चढ़ै जब तद्भव मोक्ष होय, तातैं क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव मोक्ष साध्य है। दरवित लिंग होय,

प्रमाण भंगी साधक है, वस्तु सिद्धि करना साध्य है। शास्त्र सम्यक् अवगाहन साधक है, श्रद्धा गुणज्ञता साध्य है। श्रद्धागुण साधक है, परमार्थ पावना साध्य है। यतिजन सेवा साधक है,आत्म हित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्व श्रद्धान साधक है, निश्चय सम्यक्त्व साध्य है। देव शास्त्र गुरुकी प्रतीति साधक है, तत्त्व पावना साध्य है। तत्वामृत पीवना साधक है, ससार खेद मेटना साध्य है। मोक्ष मार्ग साधक है, संसार खेद मेटना साध्य है।

मोक्ष-मार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकार विलय साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्र तात्पर्य साधक है, शास्त्र तात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चय पद पावना साध्य है। नय प्रमाण निक्षेप साधक है, न्याय स्थापना साध्य है। सम्यक् प्रकार हेय उपादेय जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीवना साध्य है। परवस्तु-विरक्तता साधक है, निज वस्तु प्राप्ति साध्य है। पर दया साधक है, व्यवहार धर्म साध्य है। स्व-दया साधक है, निज धर्म साध्य है। सवेगादि

आठ गुण साधक है, सम्यक्त्व साध्य है। चेतन भावना साधक है, सहज सुख साध्य है। प्राणायाम साधक , मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्म रुचि साधक है, अखण्ड-सुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु प्रसिद्ध करना साध्य है। वस्तु ग्रहण साधक है, सकल कार्य सामर्थ्य साध्य है। परपरिणति साधक है, भव दुःख साध्य है। निज परिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है। ऐसैं साधक साध्य के अनेक भेद जानि निज अनुभव करिये। ये सब स्वरूप आनन्द पायवे कौं बताये है। कर्म कल्पना कल्पित[1] है। आत्मा सहज अनादि सिद्ध है। अनन्त सुख रूप है। अनन्त गुण महिमा कौं धरे है। वीतराग भावना तैं शुद्ध उपयोग धारि स्वरूप समाधि में लीन होय स्वसंवेदन ज्ञान परिणति करि परमात्मा प्रकट कीजै ॥

कोई कहैगा आज के समय में निज स्वरूप

---

१ शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकति पंथ साधन यहै, वागजाल सब और ॥
बनारसीदास कृत, नाटक समयसार ॥ १२६ ॥

की प्राप्ति कठिन है, बहिरात्मा तो परिग्रहवंत है, तिसतैं स्वरूप पावने का चाहि मेटि ? किन्तु, आजसौं अधिक परिग्रह चतुर्थकालवर्ती, महापुण्यवंत नर चक्रवर्ती आदिक तिनकै था, सो इसकै तौ थोरा है, सो परिग्रह जोरावरी इसके परिणामन में न आवे है।[1] यौं ही दौरि दौरि परिग्रह मैं

---

1 बाह्य परिग्रह चाहे थोड़ा या बहुत कितना ही क्यों न रहे किन्तु इसमें विशेषता मूर्छा गृद्धता या अत्यासक्ति की है। जो जितना ममत्व परिणाम वाला होगा वह उतना ही अधिक परिग्रही है, किन्तु जिसके ममत्व परिणाम जितना कम होगा वह उतना ही कम परिग्रही है भरत चक्रवर्ती षट्खण्ड की विभूति के धारक थे, परन्तु वे उसमें आसक्त नहीं थे वे उसे कर्मोदय का विपाक समझते थे इसी कारण उस परिग्रह में रहते हुए भी नाम मात्र के परिग्रही थे। परन्तु जो बाह्य में दरिद्री है किन्तु अभ्यन्तर में अत्यन्त मूर्छा से युक्त है, वह बाह्य सामग्री के संचय के बिना भी बहु परिग्रही है। दूसरे बाह्य परिग्रह कितना भी क्यों न रहे ज्ञानी जीव उसे अपना नहीं मानता, अतः वह जोरावरी या जबदस्ती से किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। किन्तु ज्यों ही अपने परिणाम बिगड़ते या विकृत होते हैं तब वह भी निमित्त कारण हो जाता है। अतः केवल बाह्य वस्तु को दोष देना उचित नहीं है। अपनी सराग परिणति ही घातक और बन्ध करती है। बनारसी दासजी ने ठीक कहा है कि—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे रागादिक मल खोय।
चित उदास करणी करे, करम बन्ध नहिं होय॥

धुकै (घुसता) है। जब ठालौ (खाली) होय, तब विकथा करै। तब स्वरूप के परिणाम करै, तौ कौन रोकै? पर-परिणाम सुगम, निज-परिणाम विषम बतावै है। देखौ अचिरज की बात, देखै है जानै है देख्यौ न जाय जान्यौ न जाय, ऐसैं कहत लाज हू न आवै। संसार चातुरीकौ चतुर आप जानिवेकौ शठ ऐसौ हठ धिठोही (धृष्टता) सौं पकरि पकरि पर-रस विसनकौं गाढौ भयौ। स्वभाव बुद्धि विसारी, भारी भव धारि अध-धंध मैं धायौ, न लखायौ आप, अब श्रीगुरु प्रताप तै सत संग मिलाय, जातैं मिटै भवताप, आप आपही मैं पावै, ज्ञान लक्षण लखावै, आप चिंतन धरावै, निज परिणति बढावै, निजमाहिं लव लावै, सहज स्व रस कौ पावै, कर्म बन्धन मिटावै, निज परिणति भाव आपमैं लगावै, वर चिद् गुण पर्यायकौं ध्यावै, तब हर्ष उपावै, मन विश्राम आवै, रसास्वादकौं जु पावै, निज अनुभव कहावै, ताकौं दूरि कौ (कौन) बतावै? भव-भांवरी घटावै, आप अलख लखावै, चिदानन्द दरसावै, अविनाशी रस पावै, जाको जस भव्य गावै,

१ मु॰ प्रति में यह वाक्य नहीं है।

जाकी महिमा अपार, जानै मिटै भव भार, म ¨
ऐसौ समयसार[1] अविकार जानि लीजिये ॥

जीजिये सदैव, कीजिये सो ही, वो ही द्रोही न होय, आप अवलोय, शुद्ध उपयोग थाय, पर को वियोग थाय, सहज लखाय, जिन आगम में कही बात, तिहुलोक नाथ कही विख्यात, निज अनुराग सेती धरि वीतरागभाव, यह दाव पायो, फिरि मिलै न उपाय, ऐसो भाव धरि, जातैं मिटै भव फंद, तातैं मानथंभ मेटि, माया जलकौं जलाय, क्रोध-अग्नि बुझाय, लोभलहरि मिटाय, विषयभावना न भाय, चिदानन्द राय पद देखौ देखौ। निज आपको गवेषौ (खोजो) परवेदना की उच्छेदना करि, सहज भाव धरि, अंतर्वेदी होय आनन्दधारा कौं देखि, परमात्मनिश्चयरूप देखि॥

इस परपरिणति नारी सौं ललचाये, कुमति सखी सगि गति-गतिमैं डोलै, निजपरिणतिराणीके वियोगतैं बहु दुखी भये। अब निजपरिणति-

---

१ आतम दरव जाकौ धारण सदैव महा, ऐसौ निज चेतन मैं भाव अधिकारी है। ताही को धारण हारी जीव को शकति ऐसी तासौं जीव जीवें तिहुकाल गुणधारी हैं॥ द्रव्य गुण पर्याय ये तो जीव दशा सब इन ही मैं वस्तु जीव जीवनता सारी है। सबको अधार सार महिमा अपार जाकी, जीवन शकति दीप जीव सुखकारी है॥ ५९ ॥

तियासौं अतीन्द्रिय भोग भोगवो, जहां सहज अविनाशी रस वर्षे है। अरूपीक मैं पद्मरागमणि कल्प (करि) आनन्द झूठे ही मानौ हौ। ऐसैं परमैं निज-भाव कल्पा[1] सो झूठे ही हौंस पूरी करो, सो न होय। आकाश मे देव एक,ताके करमैं चिन्तामणि, ताको प्रतिबिम्ब अपने वासन (वर्तन) के जल में देख्यौ, मन में विचारे मेरे चिन्तामणि है, ताके भरोसें विराने (दूसरों के) वायदें देने किये, तौ कहा सिद्धि है? झूठ कल्पना तुमहींको दुखदाई है। साचौ चिन्तामणि घर मैं, ताकौ न देखौ! अर प्रतिबिम्बमैं (चिन्तामणि) हाथि न परे। बहुत खेद करो, सो कहा बड़ाई? अब अपनो साचौ अखण्ड पद देखो। ब्रह्मसरोवर आनन्द-सुधारसकरि पूर्ण, जाको सुधारस पीवत अमर होय, सो रस पीवनो॥

१ ज्ञान उपयोग योग जाको न वियोग हुवौ, निहचै निहारे एक तिहू लोक भूप है। चेतन अनन्त रूप शाश्वतो विराजमान, गति गति भ्रम्यो तोऊ अमल अनूप है॥ जैसे मणि मांहि कोऊ काच खंड मानै तोऊ, महिमा न जाय यामैं वाही को सरूप है। ऐसैं [illegible] अपार के सरूप को विचारौ मैं, अनादि को अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है॥ ३०॥

'ज्ञान दर्पण'

अथ अनुभववर्णनम् ॥

पौद्गलिक कर्म ही करि पाच इन्द्रिय छठे मन रूप धन्या सज्ञी देह, तिस देह विषै तिस प्रमाण तिष्ठ्या हुआ भी जीवद्रव्य, इन्द्रिय मन सज्ञा नाम पावै। भाव इन्द्रिय, भाव-मन छह प्रकार उपयोग परिणाम भी भेद पड़्या है। एक एक उपयोग परिणाम एककौं देखै जानै। मन उपयोग परिणाम चिन्ता विकल्प देखै जानै। परिणाम विचार विकल्प चिन्तारूप मानना होय। तिन हूवने (होनें) सौं तिस परिणाम भेदकौं मन नाम कह्या। देखि, संत! अवर अब इन्हींकौं एक ज्ञानका नाम लेइ कथन करू हौं (हूं) तिस ज्ञान (का) कथन (करने) करि दर्शनादि सब गुण आय गये। इन मन-इन्द्रिय भेदोंकी ज्ञानकी पर्यायका नाम मति सज्ञा कहिये। मन, भेदज्ञान (विशेषज्ञान) करि अर्थसौं अर्थान्तर विशेष जानै, इस जानने कौ श्रुत सज्ञा कहिये। दोन्यौं ज्ञानपर्याय कुरूप (विपरीत रूप) सम्यग्रूप कहिये। मिथ्याती कै मतिश्रुत रूप

१ इसका विस्तृत विवेचन आत्मावलोकन के 'अनुभव विवरण" के प्रकरण में देखिये।

जानना है, तिस जाननैं विषैं स्व पर व्यापक अव्यापक की जाति नाहीं। तिस ज्ञेयकौं आप लखै अथवा लखना ही नाहीं। मिथ्यातीकैं जाननमैं कुरूपता-विपरीतता है। सम्यग्दृष्टि परकौं पर जानै है, स्वकौं स्व जानै है। चारित्र मैं मिथ्याती परकौं निजरूप अवलंबै है। सम्यग्दृष्टि निजकौं निज अवलंबै है। सम्यक्त्त सविकल्प-निर्विकल्प रूपसौं दोय प्रकार है। जघन्य ज्ञानीकैं जब तिस परज्ञेयकौं अव्यापक पररूपत्व जानि, आपकौं जाननरूप (ज्ञायकरूप) व्यापक जानै सो तो सविकल्प सम्यक्त्त। अवरु जु आप जाननरूप (ज्ञायकरूप) आपकौं ही व्याप्य-व्यापक जान्या करै सो निर्विकल्प रूप सम्यक्त्त। अवरु जो एक बेर एक ही समय विषै (स्व) स्वकौं सर्वस्व-करि लखै, तथा सर्व परकौं पर-करि लखै तहा चारित्र परम शुद्ध है॥

तिस सम्यक्तताकौं परम-सर्वथा-सम्यक्तता कहिये सो केवल दर्शन-ज्ञान पर्याय विषैं पाइये। अवरु जिस ज्ञेय प्रति प्रयुजै (उपयोग लगावै) तिसही को जानै और कौ न जानै। मिथ्यातीकैं वा सम्यक्दृष्टिकैं ज्ञेय प्रयुंजन ज्ञान तो एक सा है, परन्तु भेद इतना ही है कि मिथ्याती जेता जानै

तेता अयथार्थरूप साधै। सम्यग्दृष्टि तिस ही भावकौं जानै तिननैं ही यथार्थरूप साधै। तातैं तिस सम्यग्दृष्टिकै चारित्र अशुद्ध परिणमन सौं बंध होय सकता नाहीं। तिन उपयोग परिणामौंनैं बंध आस्रव तिन (रूप) अशुद्ध परिणामन की शक्ति कीलि राखी है। तातैं निरास्रव निरबन्ध है। अरु सब एक आपहीकौं आप चित्त वस्तु व्यापक व्याप्यता करि प्रत्यक्ष आप ही देखन लगैं जानन लगैं, अरु ते चारित्र परिणाम निज उपयोगमय चित्तवस्तु बिषैं थिरी भूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तैं। तिनही चारित्र परिणामजन्य निजानन्द होय है। यौं करि सम्यग्दृष्टिकै दर्शनज्ञान चारित्र सहित परिणाम निज चित्त वस्तु हीकौं व्याप्यव्यापकरूप देखतैं, जानतैं, आचरतैं, निजास्वाद लेय निजस्वाद दशा का नाम स्वानुभव कहिये[1]।

स्वानुभव होतैं निर्विकल्प सम्यक्त्त उपजै। (उसे) स्वानुभव कहौ, वा कोई निर्विकल्पदशा कहौ, वा आत्म सन्मुख उपयोग कहौ, वा भाव मति भावश्रुत कहौ, वा स्वसंवेदन भाव, वस्तुमगन भाव, वा स्वआचरण कहौ, थिरता कहौ, विश्राम

---

१ वस्तु विचारत ध्यावतैं मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै अनुभव याको नाम ॥१७॥ नाटक समयसार

कहौ, स्वसुख कहौ, इन्द्रीमनातीत भाव, शुद्धोपयोग स्वरूप मग्न, वा निश्चय भाव, स्वरमसाम्य भाव, समाधि भाव, वीतराग भाव, अद्वैतावलंबी भाव, चित्त निरोध भाव, निजधर्म भाव, यथास्वाद रूप यौं करि स्वानुभव के बहुत नाम हैं। तथापि एक स्व-स्वादरूप अनुभवदशा मुख्य नाम जानना। जो सम्यग्दृष्टि चउथे (चतुर्थगुणस्थान) का है। तिसकै तो स्वानुभवका काल लघु, अंतर्मुहूर्त ताई रहै है। (फिर) वह (स्वानुभव बहुत) काल पीछै होइ है। तिसतै (अविरत सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा) देशव्रती का स्वानुभव रहने का काल बड़ा है। अरु (स्वानुभव) थोरे ही काल पीछैं होइ है। सर्व विरति के स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त ताई रहै है। ध्यानस्यौं भी होय है। अति थोरे थोरे काल पीछे स्वानुभव हुआ ही करै, वारवार अवरू सात में[1]। तेई परिणाम पूर्वस्वानुभव रूप भये थे तेतौ स्वानुभव रूप रहै, पै तहां सौं मुख्य रूप कर्मधारासौं निकसि निकसि स्व रस-स्वाद अनुभव रूप होय करि चढ़ते चले हैं। ज्यौं ज्यौं आगे का काल आवै है, त्यौं त्यौं अवरू अवरू परिणाम स्वस्वादरस अनुभव रूप होय करि चढ़ते

---

१ सातवें गुणस्थान में स्वानुभवदशा बारम्बार हुआ ही करती है।

चलैं हैं। यों करि तहा सौं अनुभवदशा का परिणाम बढ़ने करि पलटनि होय है, सो क्षीणमोह अन्त लगु (तक) जाननी।

भो भव्य! तू एक बात सुनि—हम एक बार अबरु फिर कहैं हैं, यह स्वानुभव दशा स्वरस-मय रूप सुख है, शान्ति विश्राम है, शिवरूप है, निज कल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, सुख मोक्षराह है, ऐसा है। अब यह सम्यक् सविकल्प दशा यद्यपि उपयोग निरमल है तथापि यहा चारित्र परिणाम पराल्प अशुद्ध चपल होनैं सतै सविकल्प दशा दुःख है। तृष्णा करि चपल है। पुण्यपापरूप कलाप है। उद्वेगता है। असन्तोषरूप है। ऐसैं ऐसैं विलापरूप है। चारित्र परिणाम दोन्यों तैं अवस्था आप विषै देखी है। तिसतैं भला यह जु तू स्वानुभव रूप रहनेका उद्यम राख्या कर, यह हमारा वचन व्यवहार करि उपदेश कथन है। जेती जेती विशुद्धता थिरता गुणस्थान माफिक बढ़ी तेता तेता सुख बढ़ा। यारमैं (गुणस्थान) लगु (तक) कषाय घटनैतें थिरता बढ़ी। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं स्वसंवेदन रस बढ़े। स्वसंवेदन थिरता करि उपज्यौ रसास्वाद स्वानुभव सो अनन्त सुख मूल है॥

सो अनुभव धाराधर (मूसलाधार वर्षा) जगै दुःख दावानल रच न रहतु है। स्वानुभव (ही को) भव-वास-घटा भानवे कौं (नाश करने के लिये) परम प्रचण्ड पवन मुनिजन कहतु हैं[1]। अनुभव-सुधापान करि भव्य अमर अनेक भये। परम पूज्य पद कौं अनुभव ही करै है। सब वेद पुराण या विनु निरर्थक है। स्मृति विस्मृति है। शास्त्रार्थ व्यर्थ है। पूजा भजन मोह है। अनुभव विना निर्विघ्न कार्य विघ्न है। परमेश्वर कथा सो भी झूटी है। तप भी झूंठ है। तीर्थ सेवन झूंठ है ॥

तर्क पुराण व्याकरण खेद हैं। अनुभव विना ग्राम विषै गाय, श्वान, वन मैं हिरणादि ज्यों अज्ञान तपसी (है), अनुभव प्रसादतै नर कहूं रहौ सदा पूज्य है। अनुभव आनन्द, अनुभव धर्म अनुभव परमपद, अनुभव अनन्त-गुण-रस सागर अनुभवतै सिद्ध है, अनुपम ज्योति, अमित तेज

---

१ अनुभौ अखण्ड रस धाराधर जाग्यौ जहां, तहां दुख दावानल रच न रहतु है। करम निवास भव वास घटा भानवेकौं, परम प्रचण्ड पौन मुनिजन कहतु हैं ॥ याकौ रसपियैं फिर काहू को न इच्छा होय, यह सुख दानी सब जगमें महतु है। आनन्द को धाम अभिराम यह सन्तन को याही के धरैया पद सासतो रहतु है ॥ १२७ ॥ 'ज्ञानदर्पण'

अखण्ड, अचल, अमल अतुल, अबाधित, अरूप अजर, अमर, अविनाशी, अलख, अछेद, अभेद अक्रिय, अमूर्तिक, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, अविगल, आनन्दमय चिदानन्द इत्यादि अनन्त परमेश्वर का विशेषण सर्व अनुभव सिद्धि करता है। तातैं अनुभव सार है। मोक्ष को निदान सब विधान को शिरोमणि, सुख को निधान, अमलान अनुभव है। अनुभवी जीव मुनिजन के चरणारविंद इन्द्रादि सेवैं हैं। तातैं अनुभव

---

१ पर पद आपो मानि जगमें अनादि भम्यो पायो न स्वरूप जो अनादि सुख थान है। राग [illegible] भावन में मन थिति बाधा महा, बिना भेद ज्ञान भूल्यो गुणको निधान है॥ अचल अखण्ड ज्ञान ज्योति का प्रकाश लियें, घटमें ही देव चिदानन्द भगवान है। कहै 'दीपचन्द' आप इन्द्र हु से पाय परे, अनुभौ प्रसाद पद पावै निरवान है॥ १२४॥

दोहा—चिद लक्षण पहिचान तैं उपजै आनँद आप।
अनुभौ सहज स्वरूप को, जग में पुण्य प्रताप॥ १२५॥

जगतें अनादि यति ज्ञान पद धारि आये तेउ सब तिरे लहि अनुभौ निधान को। याके बिनु पाय मुनि हू सुपद निरत हैं, यह सुख सिन्धु दरसावै भगवान को॥ नारकी हू निकसि ज तीर्थकर पद पावै अनुभौ प्रभाव पहुँचावै निरवाण को। अनुभौ अनन्त गुण धाम के धरैया हैं जो तिहु लोक पूजे हित आनि गुणवान को॥ १२६॥

दोहा—गुण अनन्त के रस सबै अनुभौ रस के मांहि। यातैं अनुभौ सारिखो और दूसरो नांहि॥ १५३॥ पंच परम गुरु जे भये, ज होंगे जग मांहि। ते अनुभव परसाद तैं, यामैं धोखो नांहि॥ १५४॥ ज्ञान दर्पण

करि, ये ग्रन्थ ग्रन्थन मैं अनुभव की प्रशंसा कही है। अनुभव विना साध्य सिद्धि कहूं नांहीं। अनन्त चेतना चिन्ह रूप अनन्त गुण मण्डित, अनन्त शक्ति धारक, आतम पद को रसास्वाद अनुभव कहिये।

वारबार सर्व ग्रन्थ को सार, अविकार अनुभव है। अनुभव शास्वतौ चिंतामणि है। अनुभव अविनाशी रस कूप है[१]। मोक्ष रूप अनुभव है। तत्त्वार्थ सार अनुभव है। जगत उधारण अनुभव है। अनुभवतैं आन कोई उच्च पद नाहीं। तातैं अनुभव सदा स्वरूप कौ करिये। अनुभव की महिमा अनन्त है। कहां लौ बताइये। आठ कर्म (आत्म) प्रदेश परि आपणी थिति करि बैठे सर्व पुद्गल का ठाठ है। तिनके विपाक के उदय

---

१ अनुभव चिंतामणि रतन, अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोक्ष कौ, अनुभव मोक्ष स्वरूप ॥ १८ ॥

अनुभौ के रस कौं रसायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहु तीरथ की ठौर है। अनुभौ [illegible] जो रसा कहावै सोइ पोरसा ॥ अनुभौ अधोरसासौं ऊरध की दौर है॥ अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौ कौ स्वाद पंच अमृत कौ कौर है। अनुभौ करम तोरै परम सौं प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है॥१९॥ नाटक समयसार उत्थानिका १८,१९

पिता, कलत्र, पुत्र, पुत्री, वधू, बन्धु स्वजनादि, जावत सर्प सिंह व्याघ्र गज महिषादि, जावत दुष्ट शब्द अक्षर अनक्षर शब्दादिवान वाच्य स्नान भोग सजोग वियोग क्रिया, जावत परिग्रह मिलाप सो बड़ा परिग्रह, नाश सो दलिद्रादि क्रिया, जावत चलना बैठना हलना बोलना कांपनादि क्रिया, जावत लड़ना भिड़ना चढ़ना, उतरना कूदना नाचना खेलना गावना बजावना आदि जावत क्रिया सर्व पुद्गल का खेल जानु। नर, नारक तिर्यंच, देव इनके विभव भोगकरण विषय रूप इन्द्रियनि की क्रियादि सब पुद्गल (का) नाटक है। द्रव्यकर्म, नोकर्मादि सब पुद्गल अखारा है। तामें तूं चिदानन्द रजित होय अपना जानें है। अपनें दर्शन ज्ञान-चारित्रादि अनत गुणका अखारा परणति पातरा नाचैं, स्वरूप रस उपजावैं, जेते गुणकों वेदैं, द्रव्य वेदैं, सब भाव भये (स्वरूप) सत्ता मृदङ्ग प्रमेय ताल इत्यादि मय निज अखारा है। ऐसैं अपने निज अखारे मैं न रजि, परके अखारे मैं ममत्व किया जिसका जन्मादि दुःखफल आपने पाया, अब अपने (आपका) सहज स्वादी होय पर-प्रेम मिटाय चेतना प्रकाश का विलास रूप अतीन्द्रिय भोग भोगि, कहा झूटे ही सूनें जड़ मैं आपा मानै,

हैं। अर परकौं कहै—हमकौं यह दुःख दे है। (लेकिन) यामें शक्ति दु:ख देने की नाहीं। विरानै सिर झूठा उलाहना दे है, अपनी हरामजादगीकौं न देखै है। अचेतनकौं नचावत फिरत है, सो लाजहू न आवत है। मडे मौं (मुर्दा मों) सगाई करि अब हम इस सौं प्यार करि सबध करैंगे सो ऐसी बात लोक मैं हू निन्द्य है। तुम तौ अनन्तज्ञान के धारी चिदानन्द हो। अनादि झूठी विडम्बना जड़सौं आपा माननैं की मेटो। तुम एक (मात्र) पर-मानि छाड़ो। पराचरण ही तैं तुमारा दर्शन ज्ञान मैं लाभ न भया है। यदि देखनैं जाननै तैं जो बध होता, तो सिद्ध लोकालोककौं देखते हैं, जानते हैं तेहू बधते, तिसतैं परिणाम तादात्म्य नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान न बधै हैं। परिणामहीतैं ससार, परिणामहीतैं मोक्ष मानि, परिणाम ही राग द्वेष मोह परिणाम करै। इनका जतन हू (रक्षा भी) परिणाम (ही) करै, ज्ञान दर्शन मैं राग द्वेष नाहीं, वे देखवे जानवे मात्र हैं। इनकी विकारतातैं वे हू विकारी करावे। यदि देखना जानना राग द्वेष मोह करि होय तो बधै, राग द्वेष मोह न होय तो न बधै। यह परिणाम शुद्धता अभव्यकैं न होय, तातैं ज्ञान दर्शन शुद्ध

न होय। भव्यकैं परिणाम स्वरूपाचरण के होयँ तातैं ज्ञान दर्शन शुद्ध होय। उक्त च

स्वानुष्ठान विशुद्धे दृग्बोधे जायते[1] कुतो जन्म।
उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम्[2] ॥१६॥
पद्मनन्दि पचीसी के निश्चय पचाशत प्रकरण

यहां कोई प्रश्न करै कि वस्तु देखिये नाहीं, जानिये नाहीं, परिणाम वामैं कैसैं दीजिये ? ताका समाधान—पर दीखता है जानिये है सो परका देखने वाला उपयोग है, तौ देखै है, ज्ञान है तौ जाने है। उपयोग तौ ठावा (निश्चल, स्थिर) भया नास्तिरूप हुआ, जो यह उपयोग गहरया तिस ही मैं परिणाम धरि थिरता धरि आचरण करि विश्राम गहै। येता ही (इतना ही) परिणाम शुद्ध करने का काम है उक्तं च—"उवओगमओ जीवो" इति वचनात्। जातैं परिणाम वस्तु वेद्य स्वरूप लाभ ले, वस्तु में लीन होय है। स्वरूप

---

१ क ख० प्रति में 'जु मते' पाठ पाया जाता है।

२ इस पद्य का भावानुवाद इस प्रकार है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार विनाश होजाता है इसी प्रकार सम्यक्चारित्र से विशुद्ध दर्शन ज्ञान के होने पर फिर संसार में जन्म नहीं होता।

ससार प्रनलान्धकार मथने मार्तण्डचण्ड द्युति ।
-जैनी मूर्तिरुपास्यता शिव सुखे भव्य पिपासास्ति चेत्[1] ॥

स्वसवेदन रूप वीतराग मुद्रा देखि स्वसवेद भावरूप अपना स्वरूप विचारै—पूर्व ये सराग थे, राग मेटि वीतराग भये। अब मैं सराग हौं, इनकी ज्यौं राग मेटौं तो वीतराग मेरा पद मैं पावौं। निश्चय (से) मैं वीतराग हूं ॥ उक्त च—

"पिच्छहु अरहो देवो पच्छर घडियो हु दरसय मग"

इति वचनात् ॥ इन स्थापना के निमित्तैं तिहु काल तिहुं लोक मैं भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम पुज्य है। द्रव्य जिन द्रव्यजीव

---

१ इन पद्योंका भावानुवाद इस प्रकार है:—हे भव्य यदि तुझे मोक्ष सुख की पिपासा है उसे प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, तो तुम्हें जैन मूर्ति की उपासना करनी चाहिये। वह मूर्ति क्या प्रशमस्वरूप है, क्या वत्सल मय है, श्रेय रूप है ? क्या ज्ञानानन्द मय है ? क्या उन्नत रूप है और क्या सर्व शोभा से सम्पन्न है। इस तरह से अनेक विकल्पों से क्या ? ध्यान के प्रसाद से आपकी मूर्ति को देखने वाले भव्यों को क्या वह सर्वातिग तेजको दिखलाती है ? अपितु दिखलाती ही है। और जो मूर्ति मोह रूपी प्रचण्ड दावानल को शान्त करने के लिये मेघ वृष्टि के समान है, जो इच्छित कार्यों को सम्पन्न करने के लिये निर्झरणी (नदी) का स्रोत है, जो सज्जनों के लिये कल्पेद्रवल्ली है, कल्पलता के सदृश अभीष्ट फल प्रदान करने वाली है, और ससार रूपी प्रबल अन्धकार को मथन करने के लिये मार्तण्ड की प्रचण्ड द्युति है, सूर्य का प्रबल प्रकाश है। अत हे भव्य ऐसी उस वीतराग मूर्ति की उपासना जरूर करनी चाहिये।

अघातिकर्म रहे तातैं याको विवक्षा मैं च्यारि गुण व्यक्त न भये। ज्ञान में सब व्यक्त भये। सो कहिये हैं। नामकर्म मनुष्य गति रूप है। तातैं सूक्ष्म पायो नहीं। केवलज्ञान मैं व्यक्त है। वेदनी है तातैं याको अबाधित नहीं। अन्तरमैं ज्ञानमैं व्यक्त है। अवगाह याको नहीं। आपतैं ज्ञानमैं व्यक्त है। अगुरु लघुगोत्रतैं पायो व्यक्त नहीं, ज्ञानमैं है। यह अघाति हु तैं व्यक्त नाम न पाया। नाम स्थापना द्रव्य भाव पूज्य हैं अरहंत के नाम लेत ही परमपद की प्राप्ति होय ॥ उक्त च

जिन सुमरो जिन चिन्तवो जिन ध्यावो सुमना।
जिन ध्यायतहि परम पय, लहिये एक छणेन ॥ १ ॥

जिन स्थापनातैं सालम्बध्यान करि निरालम्ब पद पावै है।

कैसी है स्थापना—

किं मङ्गलमयी किमुत्तममयी श्रेयोमयी किं शिवु।
ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सत्शोभामयी ॥
इत्थ किं किमिति प्रकल्प न परैस्तन्मानिरुद्धीत्यता (ताम्)
किं सत्यातिगमेन दर्शयति सा ध्यानप्रसादा मद ॥१॥

मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसम।
स्रोतो निम्नगणी समीहित विधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम्।

संसार प्रबलान्धकार मथने मार्तण्डचण्ड द्युति ।
जैनी मूर्त्तिरुपास्यतां शिव सुखे भव्य पिपासास्ति चेत्[1] ॥

स्वसंवेदन रूप वीतराग मुद्रा देखि स्वसंवेद भावरूप अपना स्वरूप विचारै—पूर्व ये सराग थे, राग मेटि वीतराग भये। अब मैं सराग हौं, इनकी ज्यौं राग मेटौं तो वीतराग मेरा पद मैं पावौं। निश्चय (से) मैं वीतराग हूं॥ उक्तं च—

"पिच्छह अरहो देवो पच्छह घडियो दु दरसय मग्ग"

इति वचनात्॥ इम स्थापना के निमित्तैं तिहुं काल तिहुं लोक मैं भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम पूज्य है। द्रव्य जिन द्रव्यजीव

1 इन पद्योंका भावानुवाद इस प्रकार है—हे भव्य यदि तुझे मोक्ष सुख की पिपासा है उसे प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, तो तुम्हें जैन मूर्ति की उपासना करनी चाहिये। वह मूर्ति क्या ब्रह्मस्वरूप है, क्या तन्मय मय है, ध्येय रूप है? क्या ज्ञानानन्द मय है? क्या उन्नत रूप है और क्या सर्व शोभा से सम्पन्न है। इस तरह से अनेक विकल्पों से क्या? ध्यान के प्रसाद से आपकी मूर्ति को देखने वाले भव्यों को क्या वह सर्वातिग तेजको दिखलाती है? अपितु दिखलाती ही है। और जो मूर्ति मोह रूपी प्रचण्ड दावानल को शान्त करने के लिये मेघ वृष्टि के समान है, जो इच्छित कार्यों को उत्पन्न करने के लिये निर्झरणी (नदी) का स्रोत है, जो सज्जनों के लिये कल्पद्रुमवल्ली है, कल्पलता के सदृश अभीष्ट फल प्रदान करने वाली है, और संसार रूपी प्रचण्ड अन्धकार को मथन करने के लिये मार्तण्ड की प्रचण्ड द्युति है, सूर्य का प्रबल प्रकाश है। अतः हे भव्य ऐसी उस वीतराग मूर्ति की उपासना जरूर करो।

सोह्र भाव पूज्य हैं। तातैं पूज्य भावि नय (से हैं) अथवा तीन कल्याण तक द्रव्य जिन हैं। सो पूज्य हैं। भाव जिन समोशरणमण्डित अनन्त चतुष्टय युक्त भव्यनकौं तारें, दिव्यध्वनितैं उपदेश देय करि साक्षात् मोक्षमार्ग की चर्चा करैं, ये परमातमा भावजिन कहिये ॥

आगें सिद्ध देवका वर्णन कीजिये है ॥ सिद्ध निराकार परमातमा है। अनन्त गुण रूप भये, अपने अनन्त गुणकौं गुणनिकरि पर्यायतैं वेदि, द्रव्य गुणकौं भोगवै हैं। लोकशिखर पर तिष्ठै हैं षड्गुणी वृद्धि हानि (रूप) अर्थ पर्याय किंचून चरम देहतैं प्रदेशनि की आकृति आकार (रूप) व्यंजन पर्याय (से सहित हैं)। उक्तं च—

मोम गयो गलि मूसिमैं जारस अंबर होय।
पुरुषाकौं ज्ञान-मय वस्तु प्रमानौं सोय[1] ॥

---

[1] ध्यान हुताशन में अरि इंधन, झौंक दियो रिपु रोक निवारी।
शोक हरा भवि लोकनको वर केवलज्ञान मयूख
लोक अलोक विलोक भये शिव जन्म जरा मृत पं
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पग धोक त्रिका
सीरथ नाथ प्रनाम करैं, तिन्हे न बनन में
मोम गयौ गलि मूस मभा, व्योम तद
ऐसे ग..र नदी पति नीरै भये
थोक बसैं, थोक

देवकौं जानैं, तव स्वरूप अनुभव होय है।

॥ इति देवाधिकार ॥

॥ अथ ज्ञानाधिकारः ॥

ज्ञान लोकालोक सकल ज्ञेयकौं जानैं, निश्चय जानन रूप स्वरूप हैं ऐसी ज्ञानकी शक्ति है। ससार अवस्थामैं अज्ञानरूप भई है। तौऊ निश्चय तैं निज शक्ति न जाय है। बादरघटाके आवरणतैं सूर्य तेज न जाय, त्यौं ज्ञानावरणतैं ज्ञान न जाय, आवऱ्या जाय नाश न होय। ज्ञान सव गुणमैं बड़ा गुण है। इसमैं अनन्त गुण व्यक्त जानैं। ज्ञान विना ज्ञेय का ज्ञान न होय। ज्ञेय विना जानवे योग्य कुछ भी न होना। य तैं ज्ञान प्रधान है। अनन्त गुणात्मक वस्तु तौऊ ज्ञान मात्र ही है। आचार्य यहु ग्रन्थन मैं आतमा ऐसौ कह्यौ। काहे नैं? "लक्षण प्रसिद्ध्यालक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्" जैसे मन्दिर श्वेत काइये यद्यपि मन्दिर स्पर्श रस श्वेतादि बहु गुण धरै है, तथापि दूरिनैं श्वेत गुणकरि भासैं, तातैं मुख्यतातैं श्वेत मन्दिर कहिये। प्रसिद्ध लक्षण आत्मामैं ज्ञान है। तातैं ज्ञानमात्र आत्मा कह्यौ। एक एक गुणकी अनतशक्ति अनंत पर्याय गुणकी एक अनेक भेदादि सव जानैं, ज्ञान विना

वस्तु सर्वस्व निर्णयरूप स्वरूपकौं न जानै, तातैं ज्ञान प्रधान है। मतिज्ञानादि ज्ञानके पर्याय हैं। सो क्षयोपशम ज्ञान अंश (भेद) शुद्ध भये। तातैं पर्याय ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय करि लोकालोक जानैं है। ज्ञेयका नाश होत है, परि ज्ञानका नाश नाहीं, तातैं जेतौ ज्ञेय तेतौ ज्ञान, मेचक उपयोग लक्षण ज्ञान, उपचार तैं ज्ञान मैं ज्ञेय है। तातैं वस्तु स्वरूप मैं ज्ञेयका विनाश, ज्ञानका विनाश नाहीं॥

यहा कोई तर्क करै—ज्ञान मैं सकल ज्ञेय उपचारतैं हैं। तो सर्वज्ञ पद उपचरित भयो, उपचार झूठा है। तो कहा सर्वज्ञ पद झूठ भयो? ताका समाधान—जाके उपचार ही मात्र मैं लोकालोक भास्यौ, तौ वाके निश्चय ज्ञानकी महिमा कौंन कहै? यह ज्ञान स्वसंवेद नहीं भया सबकौं जानै, आपके जानै परका जानना थपै (होय) परके जानैं स्वका जानना थपै है। परकी अपेक्षा आप है, आपकी अपेक्षा पर है। विवक्षातैं वस्तु सिद्धि है, ज्ञानतैं स्वरूपानुभव है। यह ज्ञानाधिकार है।

॥ अब ज्ञेयाधिकार लिखिये ॥

"ज्ञातु योग्य ज्ञेय" ज्ञेय जानवे योग्य पदार्थ

यह वाक्य मु० प्रतिमें नहीं है।

कौं कहिये। सो पदार्थ की तीन अवस्था हैं। द्रव्य अवस्था, गुण अवस्था और पर्याय अवस्था॥ द्रव्य अवस्था मुख्य है। काहेतैं? पदार्थ द्रव्य अवस्था न धरै तौ द्रव्य विना गुण पर्यायका व्यापना न होय, तब द्रव्य न होय, तब पदार्थ न होय, तातैं द्रव्य अवस्था मुख्य है। पीछैं गुणअवस्था है। काहेतै? गुण विना द्रव्य न होय। तातैं "गुणसमुदायो दव्व" ऐसा जिन वचन है। पर्याय अवस्था न होय तौ वस्तुकौं परणावै कौन? उत्पाद व्यय ध्रौव्य न सधै, षड्गुणी वृद्धि-हानि न होय, तब अर्थ पर्याय का अभाव भये, वस्तु का अभाव होय तातै पर्याय अवस्थातै सर्व सिद्धि है।

द्रव्य, गुण-पर्यायकौं व्यापै, गुण द्रव्य-पर्यायकौं व्यापै, पर्याय गुण-द्रव्यकौं व्यापै, तीनों अवस्था पदार्थ की हैं। पदार्थ सत्व अवस्था करि अस्ति है, पर चतुष्टय अवस्थातैं नास्ति है, गुण अवस्थातैं अनेक हैं, वस्तु अवस्थातैं एक हैं, गुणादि भेद करि भेद रूप हैं, अभेद वस्तु स्वरूप करि अभेद है, द्रव्य करि नित्य है, पर्याय करि अनित्य है, शुद्ध निश्चयतै शुद्ध है, सामान्य विशेष रूप वस्तु वस्तुत्व है, द्रव्यके भावकौं धरै द्रव्यत्व है, प्रमेय के भावकौं धारै प्रमेय रूप है, अगुरु लघुके

भावकौं धरै अगुरु लघु अवस्था है, प्रदेशकौं धरै प्रदेश रूप है, अन्यत्व गुण लक्षण भेद अन्य करि अन्यत्व है, स्व पर करि अन्य है, नाना पदार्थतैं अन्य है, द्रव्यत्व है, पर्यायत्व है, सर्वगत असर्वगत अप्रदेशत्व है, मूर्त है, अमूर्त है सक्रिय अक्रिय, चेतन अचेतन, कर्तृत्व अकर्तृत्व, भोक्तृत्व अभोक्तृत्व, नाम उपलक्षण क्षेत्र, स्थिति, संस्थान सरूप फल द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव, संज्ञा-संख्या-लक्षण प्रयोजन तत्स्वभाव, अतत्स्वभाव, सप्तभंग रूप अन्योन्यगुण करि सिद्धि, गति हेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाह हेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, मूर्तत्व आदि विशेष गुण पदार्थ सामान्य विशेष स्वभावकौं धरै है। नाना पदार्थ एक पदार्थ करि जैसी विवक्षा होय तैसी समझ लेणी॥

पदार्थ सत्ता रूप है। सत्ता, महासत्ता[1] अवान्तर सत्ता[2] दोय भेद लिये है। सत्व असत्व, त्रिलक्षण-अत्रिलक्षण एकत्व अनेकत्व, सर्व पदार्थ स्थित स्व एक पदार्थ स्थितत्व, विश्वरूप-एकरूप, अनंतपर्यायत्व-एकपर्यायत्व, द्रव्य ऐसा द्रव्य भाव सर्व द्रव्य मैं

---

१ समस्त पदार्थों के अस्तित्व गुण के ग्रहण करनेवाली सत्ता को महासत्ता कहते हैं।

२ किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तर सत्ता कहते हैं।

महासत्ता जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य स्वरूप रूप धर्नै। अवातर सत्ता, द्रव्य सत्ता, अनादि-अनन्त पर्याय सत्ता, सादि सांत-स्वरूप सत्ता, तीन प्रकार, द्रव्य स्वरूप सत्ता, गुणसत्ता पर्यायसत्ता, गुणसत्ता का अनन्त भेद, ज्ञान सत्ता दरसनसत्ता अनंत-गुणसत्ता पृथक् भेद न छे (नहीं है), अनन्यत्व भेद छे। जेते कछु निजद्रव्यगुण परद्रव्य गुण हैं। जेतीक सब द्रव्यन की अतीत अनागत वर्तमान पर्याय तीन काल के नव पदार्थ द्रव्य-गुण पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब ज्ञेय नाम आगममैं कह्या है। ज्ञानगोचर जो कछु होय, सो सब ज्ञेयनाम जानौं। "ज्ञातु योग्य ज्ञेय" यह ज्ञेयाधिकार ज्ञेय जानि परकौ व्यंजन करै, अतः निज ज्ञेयकौ जानि स्वरूपानुभव करणा॥

॥ आगें निजधर्माधिकार कहिये हैं ॥

निज धर्म वस्तु स्वभाव सो आत्मा (का) निज धर्म, निर्विकार सम्यक् यथारूप अनंत गुण पर्याय स्वभाव सो धर्म कहिये। निश्चय ज्ञानदर्शनादि अपना धर्म है। जीव निज धर्म धरत ही परम शुद्ध है। निज कहिये आप, तिसका धर्म कहिये स्वभाव, सो निज धर्म कहिये। (प्रश्न) अपने स्व-

किये उनके धर्मकौं प्रगटै॥ सब तैं उत्तम यातैं परम धर्म, निजरूप तैं अनन्त सुख होय यातैं हित धर्म, और मैं न पाइये यातैं असाधारण धर्म,अविनाशी आनंद सत्‌रूप, तातैं अविनाशी सुखरूप धर्म, चेतनाप्राण धरै तातैं चेतना प्राण धर्म, परमेश्वर सहज रूप (है) ऐसे स्वभाव मय परमेश्वर धर्म, सबतैं उत्कृष्ट है तातैं सर्वोपरि धर्म, अनन्त गुण है स्वभाव जाकौ तातैं अनन्त गुण धर्म, शुद्ध स्वरूप सदा परणमैं शुद्ध भये तातैं शुद्ध स्वरूप परिणतिधर्म, अपार महिमाकौं लिये तातैं अपार महिमा धारक धर्म, अनन्त शक्ति कौं धरै। अनन्त शक्ति रूप धर्म, अनन्तपर्याय एक गुणकी, ऐसे अनत गुण अनत महिमा कौं धरै, सो निज धर्म की महिमा कहा लौ कहिये ? एकोदेश निज धर्म धरै हू ससार पार होय है। काहे तैं एकोदेश भयें सर्वोदेश होय ही होय। तातैं जानि, यौं पर-धर्म तैं अनंत दुःख, निज धर्म तैं अनत सुख॥ यातैं निज धर्मकौं धारि अपना परमेश्वर पद प्रगट कीजे। निज धर्म की धारणा अनुभवतें होय। निज धर्म भये अनुभव होय। यातैं अनुभवसार सिद्धि निमित्त निज धर्म अधिकार कह्या॥

आगै मिश्र धर्म अधिकार कहिये हैं।

सो मिश्र धर्म अन्तरात्माकै है, सो काहेतैं ? सम्यक् स्वरूप श्रद्धान जेते कषाय अंश हैं तेते राग द्वेष धारा है। आत्म श्रद्धा भाव मैं आनंद होय है। कषाय सर्वथा न गई, मुख्य श्रद्धा भाव, गौण परभाव, एक अखण्ड चेतना भाव सर्वथा न भया, तातैं मिश्र भाव है। अज्ञान भाव बारमैं (गुणस्थान) तक एकोदेश अज्ञान चेतना है। अरु कर्मचेतना भी है। तातैं मिश्र भाव है। स्वरूप उपयोग मैं प्रतीति भई, परि शुभाशुभ कर्मकी धारा वहै है। तिनसौं रजक भाव कर्म धारा मैं है। पर (परन्तु) श्रद्धान स्वरूप मुक्ति कारण है। भव बाधा मेटनेकौं समर्थ है। ऐसा कोई कर्म धाराका दुर्निवार आगा है (यद्यपि) प्रतीति मैं स्वरूप ठाना किया है। तौ हू सर्वथा न्यारा न होय है, मिश्र रूप है। यहां कोई प्रश्न करै–कि, सम्यक् गुण सर्वथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि कै भया है या न भया है ? ताका समाधान करौं—जो कहोगे, सर्वथा भया, तौ सिद्ध करौ। काहेतें ? एक गुण सर्वथा विमल भये सब शुद्ध होय, सम्यक् गुण सब गुण [illegible]रूपा है, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सब गुण

सम्यक् भये। सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं, एकोदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा ज्ञान सम्यक् होता तौ सर्वथा सम्यक् गुण शुद्ध होता, तातैं सर्वथा न कहिये। जो किंचित सम्यक् गुण शुद्ध कहिये, तौ सम्यक्गुण का घातक मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कर्म था सो तो न रह्यो। जिस गुण का आवरण जाय सो गुण शुद्ध होय। तातैं किंचित् हू न बनै।

सो कैसैं हैं। सो समाधान करिये है सो आवरण तौ गया परि सब गुण सर्वथा सम्यक् न भये। आवरण गये तैं सम्यक् सब गुण सर्वथा न भये तातैं परम सम्यक् नाहीं। सब गुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् होय तब परम सम्यक् ऐसा नाम होय॥ विवक्षा प्रमाण तैं कथन प्रमाण है। तिम (सम्यग्) दर्शन परि पौद्गलिक स्थिति जैसैं नाश भई, तब ही इस जीवका जो सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व रूप परणम्या था, सोई सम्यक्गुण सपूर्ण स्वभाव रूप होय परणम्या-प्रगट भया। चेतन अचेतन की जुदी प्रतीति सौं सम्यक्त्व गुण निज जाति स्वरूप होय परणम्या, तिसी का ज्ञान गुण अनन्त शक्ति करि विकार रूप होय रह्या था, तिन गुण की अनन्त शक्ति विषैं केतेक शक्ति प्रगट भई। ताका सामान्य सौं नाम मति श्रुति भयो कहिये।

अथवा निश्चय ज्ञान श्रुत पर्याय कहिये, जघन्य ज्ञान कहिये। अवर सर्व ज्ञान शक्ति रही, ते अज्ञान विकार रूप होय है। इन विकार शक्तिन कौं धर्म धारा रूप कहिये। तैसैं ही जीवकै दर्शनशक्ति अदर्शन रूप होयगी। तैसैं ही जीवकै चारित्र की केतेक चारित्र रूप केतेक अवर विकार रूप हैं। ऐसैं भोग गुण की सब गुण जेतेक निरावरण सो शुद्ध। अवर विकार सो सर्व मिश्र भाव भया। प्रतीतिरूप ज्ञान मैं सर्व शुद्ध श्रद्धा भाव भया। परि आवरण ज्ञान का तथा और गुणका लग्या है। तातैं मिश्रभाव है स्वसंवेदन है, परि सर्व प्रत्यक्ष नाहीं। सर्व कर्म अघा गये शुद्ध है। अघाति रहे शुद्ध है। घातिया नाशतैं परि सकल परमात्मा है। प्रत्यक्ष-ज्ञान तो भया है।

अर सिद्ध निकल सकल कर्म रहित परमात्मा है। अन्तरात्मा के ज्ञान धारा कर्मधारा है। कोई प्रश्न करै—जो बारहमें (गुणस्थान में) दोय धारा हैं कि एक ज्ञानधारा ही है? जो ज्ञान धारा ही है,

---

१ तिन [illegible] घाति निवारी।
थो अरहन्त सकल परमातम लोका लोक निहारी॥

२ ज्ञान शरीरी त्रिविधि कर्ममल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परम तम, भोगें शर्म अनन्ता॥
—छहढाला, पं दौलतराम

तौ अन्तरात्मा मति कहौ। जो दोय धारा हैं तौ बारहमैं (गुणस्थान में) मोहक्षय भये राग द्वेष मोह सब गये, दूसरी कर्म धारा कहां रही ? ताका समाधान--ज्ञान परोक्ष है (कारण), केवलज्ञानावरण है, तातैं अज्ञान भाव बारमें तक है। तातै अन्तरात्मा है। प्रत्यक्ष ज्ञान बिना परमात्मा नाही। कषाय गये, परि (परन्तु) अज्ञान भाव है। तातै परमात्मा नाहीं, अन्तर (अन्तरात्मा) है, बारमैं में अज्ञान कहा ? ताका समाधान—केवलज्ञान विना सकल पर्याय न भासैं सो ही अज्ञान निज प्रत्यक्ष विना हू अज्ञान है। तातैं अज्ञान संज्ञा भई। यह मिश्र अधिकार (कथा)।

निश्चय वस्तु स्वरूप

आगें, निश्चय करि वस्तु का स्वरूप जैसा है, ताका कछु वर्णन कीजिये है--वस्तु निज अपना स्वरूप अनन्त गुणमय तिनमें दर्शन ज्ञान चारित्र प्रधान हैं। काहेतैं ? देखने-जानने परिणमन करि, वेदनतैं रसास्वाद अनुभव होय, तहां सुख समकित प्रगटै, तिन करि चेतना जानी गई, तब चेतन सत्ता, चेतन वस्तुत्व, चेतन द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व ये गाये (कहे)। तातैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जीव

वस्तुका सर्वस्व है। द्रव्य-गुण पर्याय ये वस्तु की अवस्था हैं। अनादिनिधन वस्तु अखण्ड चेतना रूप वर्तै है। परि अनादि कर्म जोगतैं अशुद्ध होय रही है। सुख निधानकौं न जानै है, तोऊ शुद्ध स्वरूप है।

जैसैं काहू नैं कोई एक ज्ञानवान पुरुष कौं पूछा—हमकौं शुद्ध चेतन की प्राप्ति बताओ ? तब ता पुरुष नैं कह्या एक प्रभुका ज्ञानवान है ता पासि जाओ, तुमकौं वह बतावेगा, प्राप्ति करावेगा। तब वह गयौ। जाय, प्रश्न कियो—हमकू चेतन की प्राप्ति कराओ। तब तासौं (उससे) कह्या, कि तुम,दरियाव मे एक मच्छ रहै है, ता समीप जावो। तुमकौं यो मच्छ चैतन्य प्राप्ति करावेगा। तब वाके उपदेश सौं वह नर ता (उस) मच्छ समीप गयो, जाय प्रश्न कियो हमको शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति कराओ। तब मच्छने ऐसा वचन कह्यौ, हमारौ एक काम है, सो पहलैं करो तो पीछैं तुमकौं चिदानन्द मैं लीन करै। तुम बड़े सत हो, हमारो कार्य काहू नै अब तक न कियो, तुम पराक्रमी दीसौ हौ। तातैं यह नियम है, हमारो काज किया, अवश्य तुमारौ काज करैंगे, ठीक जानौ। तब वो पुरुष बोल्यौ, तुमारो कारिज करूंगा, सन्देह नाहीं करौ। तब

मच्छ नें वामौं कह्यौ हम बहुत दिनके तिसाये या दरियाव मैं रहे हैं। हमारी तृषा न गई, पाणी कौ जोग न जुर्‍यौ, कहूंसे जतन करि जल ल्याऔ, तुम बड़ौ उपकार करौ, हमारी तृषा मेटौ, महाजन की चाल (स्वभाव) है पर दु:ख मेटै। तातैं यह उपकार करौ हम तुमकौं चिदानन्द प्रत्यक्ष दिखाय प्राप्ति करागेंगे ॥

तब वो पुरुष बोल्यौ तुम ऐसैं काहे कहौ? जल समूह माहि तुम सदा ही रहौ हौ, ऐसैं मति कहौ, जो जल लावो। दरियाव ओर देखौ, यह जल सौं प्रत्यक्ष भर्‍यौ है। तब मच्छ बोल्यौ, ऐसैं तुम कहत हौ, सो यह बात तुम मानत हौ? तौ तुम चिदानन्द प्रत्यक्ष हौ, चेतना है, तो ऐसो विचार तुमनें कियो है। अब तुम हमकौं पूछण आये हौ, तातैं चिदानन्द हस परमेश्वर तुमही हौ। सदेह त्यागौ थिर होइ। आपणौ चैतन्य स्वरूप अनुभवौ, परके अनादि जोग मैं हू आतमा जैसा का तैसा है, पर मैं अत्यन्त गुप्त भया है। तौऊ देखनें का स्वभाव न गया। ज्ञान भाव न गया। परिणाम (परिणमन पर जैसा) न भया। परके आवरणतैं आवर्‍या, मलिन भया। परि निश्चय करि अखण्ड स्वरूप चिदानन्द अनादि का है, सो

अब कछुक समाधि वर्णन कीजिये है—

समाधिवर्णन ।

समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है, सो ध्यान एकाग्र चिन्तानिरोध भये होय है। सो चिन्तानिरोध राग द्वेष के मिटे होय है। सो राग द्वेष इष्ट अनिष्ट समागम मिटे, मिटे है। तातैं जीव जे समाधियाछक हैं, ते इष्ट अनिष्ट का समागम मेटि, राग-द्वेष त्यागि, चिंता मेटि, ध्यानमैं मन धरि, चिद् स्वरूप मैं समाधि लगाय, निजानन्द भैंटौ। स्वरूप मैं वीतरागता तैं ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै (और) वह अपने स्वरूपमैं मन लीन करै। द्रव्य गुण पर्यायमैं परिणाम लीन (होय), स्वसमय समाधि ऐसी होय है ॥

तब इन्द्रादि सम्पदाके भोग रोगवत् भासैं। द्रव्यं, द्रवणतैं नाम पाईये है। गुणकौं द्रवै (प्राप्त होवे) सो द्रव्यत्वलक्षण परिणाममैं, तातैं गुण (समुदायरूप) द्रव्यमैं परिणाम लीन होय। गुण द्रव्यमैं द्रव्यत्व लक्षण है। तौ परिणामसौं द्रव्य-गुण मिलि गये तातैं द्रव्यत्वकी एकोदेशता साधक कै ऐसी भई जो परीषह अनेक की वेदना न वेदै है। रसास्वाद मैं लीन आनदरस तृप्त भया। जब

गुणान्द्रवति गुणैर्वा द्रूय त इति द्रव्यं ' सर्वार्थसिद्धि ।

मन परमेश्वरमैं मिलै लीन होय न निकसै परमानन्द वेदै तब स्वरूप की धारणा होय।

निरन्तर जहा अचलज्योति का विलास अनुभवप्रकाशमैं भया, उपयोग में परिणाम लगे। ज्यौं ज्यौं दर्शनचेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनन्तगुण मण्डितकौं जानि रसास्वाद ले, त्यौं त्यौं पर विसमरण होय, पर उपाधि की लीनता मिटै। समाधि प्रगटै। तब उत्कृष्ट सम्यक्प्रकार स्वरूप वेत्ता होय। ज्ञान ज्ञानकौं जानै। ज्ञान दर्शनकौं जानै, ज्ञान सब गुणकौं जानै। द्रव्यकौं जानै, पर्यायकौं जानै, एकोदेश भेद साधक ज्ञान जानै। ज्ञान करि वस्तुको जानतैं परम पद पावै। ताका-सा (उस जैसा) सुख परोक्ष ज्ञान ही मैं है। प्रत्यक्ष प्रतीतिमैं वेदै है। तहा आनन्द ऐसा होय है।

सम्प्रज्ञातसमाधि मैं दुःखादि वेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै। विज्ञान स्वरूप वेदनेका है। मन विकार जेते अशकरि विलय गया तेती समाधिभई (और) सम्यग्ज्ञान करि जेता भेद वस्तु का गुणन करि जान्या तेता सुख-आनन्द वध्या। विश्राम भये, स्वरूप थिरता पाय समाधि लागी, ज्ञान धारा निरावरण होय, ज्यौं ज्यौं निजतत्त्व जानै, त्यौं त्यौं विशुद्धता केवलकरि ज्ञान परिणति परम

पुरुषसौं मिल, निज महिमा प्रगट करै । तहा अपूर्व आनन्दभावका लखाव होय तब समाधि स्वरूप की कहिये ॥

तहा अनादि अज्ञानका भ्रम भाव (जो) आकुलता मूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यास के अभाव तैं सहज पदका भाव भावत, भय वासना विलावत, दरसावत परम पदका स्थान गुणका निधान, अमलान भगवान सकल पदार्थका जानन रूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाण भाव करि, नवनिधान आदि जगतका विधान झूठा भास्या । तब प्रकाश्या आतम भाव, लखाव आपके तैं कीना, तब चेतनभाव लीना, शुद्ध धारणा धरी, निज भावना करी, शिवपदकौं अनुसरी, आनन्द रससौं भरी, हरी भवबाधा-अबाधा, जहा सदा सुधा (रूप) सेती रती शास्ती बढ़ाई शिवसुखदाई, चिदानन्द अधिकाई (यह)ग्रन्थ ग्रन्थनमैं गाई, जो समाधितैं पाईये है।

यह स्वरूपानन्द पद, भेदी समाधितैं होय है। वस्तु का स्वरूप गुणके जानें तैं जानैं । गुण का पुंज वस्तुमय है । वस्तु अभेद है । भेद गुण-गुणी का, गुण करि भया । तातैं गुणका भेद, वस्तु अभेद जनावनैं कौं कारण है ॥

---

१ २ मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

वितर्क कहिये—द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना-भावश्रुत श्रुतमैं स्वरूप अनुभवकरण कह्या। परमातम उपादेय कह्या। ताही रूपभाव सो भावश्रुतरस पीव। अमरपद समाधि तैं है। विचार, अनादि भव भावन का नाश, चिदानन्द द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार न्यारा जानि, दर्शन-ज्ञान वानिगीकौ पिछानि, चेतनमैं मग्न होता, ज्यौं ज्यौं उपयोग स्वरूप लक्षणकौं लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपर भेद विचारने (से) सारपद पाय समाधि लागी। अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया। अनादि परइन्द्रिय जनित आनन्द मानै था, सो मिट्या। ज्ञानानद मैं समाधि भई, वस्तु वेदी, आनंद भया गुण वेदि आनन्द भया। परिणति विश्राम स्वरूप मैं लिया, तब आनन्द भया। एकोदेशस्वरूपानन्द ऐसा है॥

जहां इन्द्रियविकार बल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रस रूप समाधि जागी है, "अहं ब्रह्म" "अहं अस्मि" ब्रह्म प्रतीति भावनमैं थिरता मैं समाधि भई, तहा आनन्द भया। सो केतेक काल लगु 'अहं' ऐसा भाव रहे, फिर समाधिमैं "अहंपणा' तौ छूटे, 'अस्मि' कहिये है, हूं ऐसा भाव रहै तहा दर्शन ज्ञान मय हौं, मैं समाधि लागैं हौं, ऐसा हू रहणा (भी) विकार है।

इसके मिटें विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुत वितर्कपणा मिटी। एकत्व, स्वरूप में भया, एकता का रस रूप मन लीन भया, समाधि लागी, तहा विचार भेद मिट्या, अनुभव वीतराग रूप स्वसवेदन भाव भया। एकत्व चेतना में मन लागा, लीन भया। तहा इन्द्रियजनित आनन्दके अभाव तैं स्वभाव लखावका रसास्वाद करि आनन्द यह्या, तहा फिरि "अस्मि भाव" ज्ञान ज्योतिमैं था सो भी थक्या॥

आगैं विवेकका स्वरूप, स्वरूप परिणति शुद्धी का ऐसा–जहा परमात्माका विलास नजीक भया, तहा अनत गुणका रस (भया) फिरि परिणामवेदि समाधि लागी। निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया। प्रतीति रागादि रहित भावनमैं, मनोविकार मठोत गया। तब आगैं अश प्रज्ञात भया। तब परके जाननें मैं विस्मरणभाव आया। तब केवलज्ञान अतिशीघ्रकाल मैं पावै। परमात्मा होय लोकालोक लखावै। ऐसी अनुभवकी महिमा मन के विकार मिटे होय है। सो मन विकार मोह के अभाव भयें मिटे है। सकल जीवकौं मोह महारिपु है। अनादि ससारी जीवकौं नचावै है। अरु चउरासी मैं ससारी जीव हर्ष मानि-मानि भव-

समुद्रमैं गिरैं हैं-परे हैं (तो भी) आपाकौं धन्य मानै है। देखो धिठोही भूलितैं कैसी पकरी है। नैक निज-निधि अनंत सुखदायककौं न सभारै है। यातैं इन ही जीवनकौं श्री गुरूपदेशामृत पान करने जोग्य है। इसतैं मोर मिटै (तथा) अनुभव प्रगटै सो कहिये—

प्रथम, श्री जिनेंद्र देव-आज्ञा प्रतीति करै, तब पाछै भगवत् प्रणीत तत्व उपादेय विचारै (तब) चेतन प्रकाश अनंत सुखधाम, अमल अभिराम, आत्माराम, पररहित उपादेय है-पर हेय है। स्व-पर-भेदज्ञान का निरतर अभ्यास तैं शुद्धचैतन्य तत्वकी लब्धि होय, तिहितैं राग-द्वेष-मोह मिटै। कर्म संवर होय तब कर्म मिटवे तैं निज ज्ञान तैं निर्जरा होय। तब सकल कर्मक्षय निज परिणाम हुवा भाव-मोक्ष होय। तब द्रव्य-मोक्ष होय ही होय। तातैं भेद-ज्ञान अभ्यासतैं परमपद सिद्ध (होय) सो भेद ज्ञान उपजाने का विचार कहिये हैं॥

ज्ञान भाव-जाननरूप-उपयोग विभावभाव अपनैं जानैं है। सो विभाव के जानने की शक्ति आत्मा आपणी जानैं। जानि रूप परिणमन करै। ज्ञान रस पीवै विभावनकौं न्यारे न्यारे जानैं। विभाव सुधाधारा, ज्ञानरूप परिणाम सुधाधारा न्यारी [न्यारी] धारा दोन्यौं जानैं। पुद्गल अश-

आठकर्म-शरीर भिन्न है जड़ है। चेतन उपयोगमय है। इनमैं विवेचन करे। जुदा प्रतीति भाव करै, प्रत्यक्ष (शरीर) जड़ रहैं। सदा जामैं चेतना प्रवेश न होय। चेतना जड़ न होय, यह प्रत्यक्ष सब ग्रन्थ कहैं सब जन कहैं। जिनवाणी विशेष करि कहै। अपनैं ज्ञान हू मैं आवै। शरीर जड़ भनते त्यागै। दर्शन ज्ञान सदा साथ रह्यो किया, सो अब भी देखनैं जाननैं वाला यह मेरा उपयोग सो ही मेरा स्वरूप है। तब उपयोगी अनुपयोगी विचारत, प्रतीति जड़ चेतन की आवै। विभाव कर्म-चेतना है। कर्म-राग द्वेष मोह-भाव कर्म तिस में चेतना परिणमै है। तब चिद्विकार होय। इस चिद्विकारकौं आप करि आपा मलिन किया है। केवलज्ञान प्रकाश आत्माका विलास है। तिसकौं न सम्भारै है। मोहवशतैं ग्रन्थकौं सुणै है अरु जानै है। शरीर विनसैगा परिवार, धन, तिया, पुत्र ये भी न रहैंगे, परि इनसौं हित करै। नरकपथ परै। अनत दु ख कारणकौं सुख समझै॥

ऐसी अज्ञानता मोह वश करि है। तातैं ज्ञान प्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है। सो सदा स्वभाव मेरा मैं हौं। कबहू जिसका वियोग न होय, अनत महिमा भण्डार, अविकार, सार-

सरूप, दुर्निवार मोह सौं रहित होय। अनुपम आनन्दघन की भावना करणी। अंश अंश पर का, जड़ वा पर जीव, सब स्वरूपसौं भिन्न जानि, दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनतगुणमय हमारा स्वरूप है। प्रतीतिमैं ऐसैं भाव करत पर न्यारा भासै, विभावरूप कर्ममल आपके भरम तैं भया, तिसतैं भरम मेटि, विभाव न होय, स्वभाव प्रगटै, अनादि अज्ञानतैं शुद्ध ज्ञान भया। शुद्ध-अशुद्ध दोऊ दशा मैं ज्ञान शासती शक्ति कौं लिये चिद्विकार मान-क्रोधादि रूप भये-होय सो ही भाव मेटि, निर्विकार सहज भाव आप आपमैं आचरण विश्राम थिरता परिणाम करि करै। जो बाह्य परिणाम उठै है सो अशुद्ध है, सो परिणामका करणहार अशुद्ध होय है। बाह्य विकारमैं न आवै। चेतना नाव उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायक शक्ति कौं नीकै जानै तो निज रूप ठाना होय। प्रतीति चेतन उपयोग की करत-करत परमौं स्वामित्व मेटि-मेटि, स्वरूप रसास्वाद चढ़ता-चढ़ता जाय। तब शुद्ध उपयोग स्वरस-पूर्ण विस्तार पावै। तब कृतकृत्य निवसै। यह श्रीजिनेंद्र शासनमैं स्याद्वाद विद्या के बलतैं निज ज्ञान कलाकौं पाय अनाकुल पद अपना करै। इहां सब कहनें का तात्पर्य यह

है। जो पर की अपनायति (अपनापन[1]) सर्वथा मेटि स्वरस-रसास्वाद रूप शुद्ध उपयोग करिये। राग-द्वेष विषम-व्याधि है सो मेटि-मेटि परमपद अमर होय अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख आप पदमैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि वेदिये। सकल संत-मुनिजन पंचपरमगुरु स्वरूप-अनुभवकौं करै हैं। तातैं महान् जन जा पथकौं पकरि पार भये सो ही अविनाशीपुर का पथ ज्ञानी जननकौं पकरणा अनन्त कल्याण का मूल है। परिणाम चेतना-द्रव्य चेतनामैं लीन भये अचलपद ज्ञानज्योति का उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्ति कौं ज्ञान द्वार मैं जानन लक्षण करि जानै। लक्ष्य-लक्षणप्रकाश आपका आपमैं भासै। तब सहजधारावाही निजशक्ति व्यक्त करता-करता संपूर्ण व्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै। देखो कोई भगल विद्या करि काकरेनकौं हरि हीरा मोती दिखावै है। कुहारीके तृण कौं सर्प करि दिखावै है। तहां वस्तु लोकनकौं सांची दरसै। परि साची नाहीं। तैसै पर मैं निज मानि आपकौं सुख कल्पै सो सर्वथा झूठ है। सुख का प्रकाश परम-अखण्ड-चेतना के विलासमैं है।

---

१ गुजराती प्रति में इसकी जगह ग्रौल शब्द है।

शुद्ध स्वरूप आप परमे योजना करैं तब न पावै।
बारबार विस्तार कहिणां इस वास्ते आवै है:—
अनादि का अविद्या मैं पगि रह्या है, मोह की
अत्यन निविड़ गांठि परी है, तातैं स्वपदकी भूलि
भई है। भेदज्ञान अमृतरस पीवै, तब अनतगुण धाम
अभिराम आत्मारामकी अनंत शक्तिकी अनत
महिमा प्रगट करैं। यह सब कथन का मूल है।
पर-परिणाम दु:ख धाम जानि, मानि परकी मेटि,
स्वरस सेवन करणां अरु निदान पर (लक्ष्य पर)
दिष्टि कीजे। विनश्वर पर-दु:ख (रूप) भूल का
अनादि सेवन किया। तातैं जन्मादि दु:ख भये।
अब नरभवमैं संतसंगतैं तत्वविचार का कारण
मिल्या, तौ फेरि कहा अनादि भव-संतानकी बाधा
के करणहार परभाव सेइये ? यह जिसमैं अखंडित,
अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल आनन्द होय,
सो भाव करिये। जो भाव मनोहर जानि मोह
करैं हैं। अपने आत्माकौं झूठी अविद्या के विनोद
करि ठगै है। सकल जगत चारित्र झूठ बन्या ही
है, सो मोहतैं न जानै है। जो स्वरस सेवन (करे) तौ
परप्रीति-रीति रंच हू न धारै (और) अनन्त महिमा
भाण्डारकौं ज्ञान चेतनामैं आपा अनुभवै। जो-जो
उपयोग उठै सो मैं हौं (हूं) ऐसा निश्चय भावनमैं,

करै, वो तिरै ही तिरै। अनादि का विचार करै। अनादि का परमैं आपा जानि दुःख सह्या। अब श्री गुरुनैं ऐसा उपदेश कह्या है। तिसकौं सत्य करि मानते ही श्रद्धातैं मुक्तिका नाथ होय है। तातैं धन्य सद्गुरु! जिनोंने भव गर्भ-में-सों काढने का उपाय दिखाया। तातैं श्री गुरुका-सा उपकारी कोई नाहीं, ऐसैं जानि श्रीगुरुके वचन प्रतीतितैं पार होना॥

जेता अनुराग विषयनमैं करै है, मित्र पुत्र भार्या धन शरीरमैं करै है, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीति भाव स्वरूपमैं, तथा पचपरम गुरुमैं करै, तौ मुक्ति अति सुगम होवै। पच परम गुरु राग भी ऐसा है, जैसा सध्याका राग सूर्य अस्तता का कारण है, प्रभात की सध्या की ललाई सूर्य उदयकौं करै है। तातैं विविधं परम गुरु विना, शरीरादिराग केवलज्ञान की अस्तता कौं कारण है (और) पच परमगुरु का राग, केवलज्ञान उदयकौं कारण है। तातैं विशेष करि परम धर्मका

१ भैया जगवासी त उदासी ह्वै कैं जगतसौं, एक छ महीना उपदेश मेरा मानु रे। और सकल्प विकल्प के विकार तजि, बैठिकै एकन्त मन एक ठौर आनुरे॥ तेरो घट सर तामैं तू ही है कमल ताको तू [illegible] मधुकर ह्वै सुवास पहिचान रे। प्रापति न ह्वै है कछु ऐसो तू विचारतु है सही ह्वै है प्रापति सरूप यौं ही जानुरे॥ ३॥ समयसार नाटक, अजीवद्वार

२ जैसी भक्ति हराम में तैसी जिनमें होय। भेद ज्ञानतैं सहज मुक्ति पाठान्तर पद ६ य॥ ३ पच प्रकार के

अनुभव-राग, परमसुखदायक है। अर्थ (लक्ष्मी) अनंत अनर्थ कौं करै, सो किसही अर्थि नहीं, अर्थ सो ही, जो परमार्थ साधै। तिस करि काम, सौ किस काम? निज कामना सै काम सो ही सुकाम सुधारै। मिथ्या-रूपधर्म अनन्त संसार करै, सो धर्म कहा? सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय निज धर्म, व्यवहार रत्नत्रय रूप कारण। मोक्ष सो ही फेरि कर्म न बन्धै, (इस लिये) ऐसा विचारणा-जैसें दीपक मन्दिर में धरै तैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसें ज्ञानी कौ ज्ञान प्रकाशमौं सब सूझै॥

कैसें? ज्ञान करि विचारै, शरीरमैं चेतन है दिष्टि (दृष्टि) द्वार करि देखै है। ज्ञान द्वार करि जानै है। अपने उपयोग करि आप चेतन हौं। आप ऐसैं जानै, देह मैं देह कौ देखनेहारा मेरा स्वरूप चेतन रूप है[१]। तौ जड़कौं चलावै हलावै है, चेतन प्रेरक है। अचेतन अनुपयोगी जड़ न देखै न जानै, यह तौ प्रसिद्ध है। जो शरीर देखै-जानै तौ, (जब) गत्यन्तर जीव होय, तब शरीर क्यों न देखै? तातैं यह देखनें जाननें करि आपा चेतन रूप, प्रत्यक्ष ठावा (निश्चय) करि स्वरूपकौं चेतन मानि, अचेतन का अभिमान तजना मोक्ष का मूल है।

१ यह कथन निमित्त का है।

शरीर वासना का त्यागी आपा स्वरूप अव-गाए चेतन स्वरूप करि भावना। ऊजड़ कौं वस्ती माने है, चेतन वस्ती कौं ऊजड़ माने है। ऐसी भूलि मेटि, तेरी चेतना वस्ती शाश्वत है। जहां वसै तौ अपना अनन्त गुण निधान न मुसावै (लुटावे)। निज भव का धणी परम साह होय। तब अनन्त सुख व्यापार में अविनाशी नफा होय। अनादि परमें आपा मान्या, परकौं ग्रहण करते-करते पर वस्तु का चोर भया, जग मांहि दुःख दण्ड भोगवै है। विवेक राजा का अमल (शासन) होय (और) पर ग्रहण रूप चोरी मिटै, तब आप साह पद धरि सुखी होय। तब निज परिणति रमणी करि अपना निज घर थिर करै। अनादि अथिर पदका प्रवेश था, ताकौं त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौं पहुचै। यह साक्षात् शिव मार्गस्वरूपकौं अनुभव यह शिव पद स्वरूपकौं अनुभव, त्रिभुवनसार अनुभव, अनुभव अनेक कल्याण अनुभव महिमा भण्डार, अनुभव अतुल बोध फल अनुभव स्वरस रस, अनुभव स्वसंवेदन अनुभव तृप्ति भाव, अनुभव अखण्ड पद संवेदन, अनुभव रसास्वाद अनुभव निर्मल रूप, अनुभव अचल ज्योति रूप प्रगट अनुभव-अनुभवके रस मैं अनंत सुख का

परम गुरु अनुभवतैं भये होंहिंगे[1]। अनुभवसौं लगेंगे सकल सत मरंत भगवत। तातैं जे गुणवन्त हैं, ते अनुभव कौं करौ। सकल जीव राशि, स्वरूपकौं अनुभवौ। यह अनुभव-पथ निरग्रन्थ साधि-साधि भगवत भये॥

परिग्रहवत सम्यग्दृष्टि हू अनुभवकौं कबहू-कबहू करैं हैं, तेहू धन्य हैं। मुक्ति के साधक हैं। जा समय स्वरूप-अनुभव करै है, ता समय सिद्ध समान अमलान आत्मतत्त्व कौं अनुभवै है। एकोदेश स्वरूप अनुभवमैं स्वरूप अनुभव की सर्वस्व जाति पहिचानी है। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उद्धार है, अविकार है, करै भवपार है, महिमाको धारै है। दोष कौ हरणहार है। यातैं चिदानन्दको सुधार है॥

सवैया।

देव जिनेन्द्र मुनीन्द्र सबै अनुभौ रस पीयकै आनन्द पायौ।
केवलज्ञान विराजत है नित सो अनुभौ रस सिद्ध लखायौ॥

---

१ गुण अनन्त के रस सबै अनुभव रसके माहि।
यातैं अनुभौ सारिखो और दूसरो नाहि॥ १५३॥
पंच परम गुरु जे भये जे होंगे जग माहि।
ते अनुभौ परसादतैं यामैं धोखौ नाहि॥ १५४॥

—ज्ञान दर्पण।

एक निरंजन ज्ञायक रूप अनूप अखण्ड स्व-स्वाद सुहायौ ।
ते धनि हैं जग माहिं सदैव सदा अनुभौ निज आपकौ भायौ ॥११॥

अडिल्ल ।

यह 'अनुभव-प्रकाश' ज्ञान निज दाय है ।
करि याकौ अभ्यास सत सुख पाय है ॥
यामैं अर्थ अनूप सदा भवि सरदहै ।
कहै "दीप" अविकार आप पदको लहैं ॥ १ ॥

इति श्री दीपचन्द साधर्मी कृत अनुभव प्रकाश नाम ग्रन्थ सम्पूर्णम्
